

श्रीप्रह्लादकृत नृसिंह स्तुति (१)

(५२)

ब्रह्मादयः सुरगणा मुनयोऽथसिद्धाः

सत्त्वैकतानमतयो वचसां प्रवाहैः ।

नाराधिर्तुं पुरुषुयैर्युनापि पिबुः

किं तोष्टुमर्हति स मे हरिस्प्रजातेः ॥ॐ

(श्री भा० ७ स्क० ६ अ० ८ श्लो०)

छप्पय

हिरनकशिपु वच कथो विगजे मिहासन हरे ।

ब्रह्मादिक इटि गये नमन सब दूरीहें ते कर ॥

पकरे पग प्रह्लाद दीठे प्रभु वरनाम दीन्ही ।

सर गद्गद् तनु पुल ः प्रेम युन इस्नुति कीन्ही ॥

निज गुनगन ते सुर सकल, करि न सकें गुन गान निज ।

अधन अयुर आत अक्ष अथ, वरनन यक्ष कल करहुं तिति ॥

सद्गुण अचळ भाग्यशास्त्रियों का ह। प्राप्त होते हैं संसार में

ॐ नृसिंह भगवान् की स्तुति करते हुए प्रह्लादजी कह रहे हैं—“दे हरे ! ब्रह्मादिक जितने देवता हैं, जितने ऋषि मुनि तथा सिद्धगण हैं, जिनकी बुद्धि सदा सत्व में ही स्थित रहती है, वे सभी अपने-वचनों के प्रवाह द्वारा तथा विविध गुणों से भी आज तक आपको आराधना करके शतुष्ट नहीं कर सके, तो फिर जिसका जन्म एक उग्रजाति अतुर कुल में हुआ है, ऐसा मैं भला आपको शतुष्ट कैसे कर सकता हूँ ।”

मनुष्य सद्गुणों के ही द्वारा कीर्ति लाभ करके अन्त में स्वर्ग के अधिकारी बन जाते हैं। सद्गुणों से बढ़कर जगत् में कोई वस्तु नहीं। किन्तु केवल सद्गुणों से ही आप चाहे कि भगवान् को प्राप्त करले तो असम्भव है, भगवान् तो भक्ति से हाँ प्रसन्न होते हैं माधव तो भक्ति प्रिय ही हैं, भीतर की भावना शुद्ध हो सभी लगन हो तो भगवान् बाहरी उपकरणों की ओर ध्यान नहीं देते।

मूलजी कहते हैं—“मुनिगो ! भगवान् ने नृसिंहान्तार लेकर असुरराज हिरण्यकशिपु को मार दिया। भगवान् ने अत्यन्त भयंकर रोपयुक्त शीमुख को देखकर ब्रह्मादि सभी देवगण भय-भीत हो गये वे दूर ही से दंडवत् प्रणाम करने लगे, किन्तु जिन भक्तगज प्रह्लाद के लिये भगवान् ने जो यह अत्यद्भुत प्रवृत्ति धारण किया, वे दूर से भला दंडवत् कैसे कर सकते हैं, जो स्वयं भयहारी हैं जिन्होंने मेरा इस लोक का ही भय हरण नहीं किया किन्तु जिन्होंने उभयलोक के भयों से मुक्त मुक्त कर दिया, उन भवभयहारी भगवान् से भला भय का क्या काम ? वे भगवान् के समीप चले गये, सर्वप्रथम उन्होंने दंड के सदृश भूमि में लाट-कर भगवान् को साष्टांग प्रणाम किया। छाटे से नन्दें स अत्यंत सुकुमार राजकुमार का अपने सम्मुख भूमि पर पड़ा देख कर भगवान् नृसिंह का हृदय वात्सल्य प्रेम से भर आया। उन्हें स्मरण हो उठा इस अवोध शिशु को मेरे कारण इसके असुर-पिता ने कितने भारी भारी हर्षा पहुँचाये। दया से द्रवित होकर कृपा से परिपूर्ण प्रभु ने बालक को स्वयं बड़े स्नेह से उठाया। उसके शरीर की भूलि पोंछी और अपनी अभयप्रद वरदक्ष उसके मस्तक पर रख दिया। भगवान् के चिन्मय परमपावन कर कमल के स्पर्श से प्रह्लादजी के समस्त अशुभ कर्म नष्ट हो

उनके जन्म जन्मान्तरों के समस्त पाप ताप संताप नष्ट हो गये। उन्हें भगवान् के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो गया। भगवत् साक्षात्कार होने से उनके हृदय में दिव्य ज्ञान का खोब परिरक्षित हो गया अत्यन्त प्रेम के कारण सम्पूर्ण शरीर पुलकित हो उठा दोनों बड़े बड़े नेत्रों से अविरल अश्रु प्रवाहित होने से अत्यन्त घोर गम्भीर प्राणी से वे प्रभु की स्तुति करते हुए कहने लगे।

प्रह्लाद ने नृसिंह भगवान् की स्तुति करते हुए कहा—“प्रभो! मैं आपकी सन्तुष्ट करने के लिये आपकी स्तुति करना चाहता हूँ, आपकी आराधना करना चाहता हूँ, किन्तु क्या मैं आपकी स्तुति करने का अधिकारी हूँ, क्या मैं आपकी स्तुति कर सकूँगा, क्या आप मुझपर सन्तुष्ट हो सकेंगे ?

आप महान् से भी महान् हैं, संसार में आपसे महान् कोई है ही नहीं। जैसे देवता हो उसकी पूजा भी वैसी ही होनी चाहिये। महान् की स्तुति भी महान् ही और करने वाला भी महान् ही हो, आप महतोऽहीशान् सन्तुष्ट कर सकते हैं।

इस संसार में सबसे बड़े तो ब्रह्माजी हैं, ब्रह्माजी से बड़ा कोई नहीं है। इन्द्रादि देवगण भी बड़े हैं, क्योंकि वे सदा सत्त्व-गुण प्रधान रहते हैं उनकी बुद्धि सत्त्वगुण में स्थित रहती है। जिन्होंने ज्ञान विज्ञान द्वारा आपको साक्षात्कार कर लिया है, ऐसे आप मुनि सिद्धगण भी श्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे नित्य निरन्तर तपादि में निरत रहते हैं, किन्तु ब्रह्मादि देवगण, आप मुनि तथा सिद्धगण अनेक सुन्दर सुन्दर वक्तियों द्वारा सुललित वाक्यों के अजस्र प्रवाह द्वारा, बड़ा बड़ा युक्तियों और वर्णों द्वारा, बड़े बड़े प्रशंसनीय गुणों द्वारा आपकी स्तुति करते रहते हैं, किन्तु वे सब भी आपका अपनी अद्वितीय आराधना के द्वारा सर्वोत्तमत्व से

सन्तुष्ट नहीं कर सके, तो मैं तो तमोगुण प्रधान, असुरजाति में उत्पन्न, वेदशास्त्रों के रहस्य से अपरिचित अज्ञ, अधम बालक भला आने दृढ़े फूटे शब्दों द्वारा आपको कैसे सन्तुष्ट कर सकूँ, कहीं ब्रह्मादिदेव और कहीं मेरा जैवा अधम। कहीं उनको वेदशास्त्र सम्मत धारा बहाइ बाण। कहीं अज्ञानता से युक्त मेरी अशुद्ध तोतली बातें। आप इतने महान् देव क्या मेरी स्तुति सुनेंगे ? क्या मेरी ओर कृपाभरी दृष्टि से देखेंगे।

प्रभो ! आपको महत्ता और अपनी छुद्रता को देखकर मुझे माह्न नहीं होता, कि आप मेरी स्तुति से प्रसन्न हो जायेंगे, किन्तु इस निराशा में भी मुझे आशा की एक व्याप्ति स्पष्ट दिखायी देती है, वह यह कि जब ब्राह्म ने गजराज का पैर पकड़ लिया था तब उसने सूँड़ में एक कमल लेकर केवल आपको भक्तिभाव से एक बार ही पुकारा था आपने उसकी पुकार सुनी और तुरन्त वही आये उसपर आप प्रसन्न हो गये ? गजराज तो कोई बड़ा व्यक्ति नहीं था। बड़प्पन की वसमें कोई बात नहीं। बारह बावों से व्यक्ति बड़े माने जाते हैं। संसार में धन से आदमी बड़ा मना जाता है, गजराज के पास धन नहीं था वह तो वनों में से लुण चुपकर निर्वाह करता है। कुलीनता से भी बड़प्पन माना जाता है, वह पशु या किसी ब्राह्मण कुल में भी उसका जन्म नहीं हुआ था। रूप से भी आदमी को आदर होता है, कि मैं कितना रूपवान् हूँ, सो, हाथों का कोई रूप भी सुन्दर नहीं। काला काला मोटा चमड़े इतने भारी शरीर में छोटी सो आँखें दोत निकले हुए भूमि तक लटकती हुई नाक या सूँड़। तपसे भी व्यक्ति बड़े माने जाते हैं, हाथी ने कोई तप भी नहीं किया। न वसने पूँव प्रतापी न कुछ बान्द्रायणादि प्रत ही किये पशु योनि में ऐसा संभव ही नहीं था। विद्या से भी सन्तुष्टों की महत्ता है गजराज ने वेदशास्त्रों का अध्ययन भी नहीं किया था। ओम्,

तेज, प्रभाव ये भी वक्ष्यन् के चिन्ह हैं, किन्तु गज में ये भी नहीं थे। बल से भी व्यक्ति बड़ा माना जाता है, यद्यपि गजराज में बल तो अपार था, किन्तु ग्राह के आगे वह जलमें अपना बल भी खो चुका था निर्वल बन गया था। पौरुष, बुद्धि और योग से भी बड़े माने जाते हैं, गजराज में इन बारहों में से एक भी नहीं था। उसके पास एक ही वस्तु थी भक्ति। भक्तिभाव से जहाँ आर्त होकर आप भक्तवत्सल को पुकारा वहीं आप तुरन्त उपस्थित हो गये। इससे मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ, कि आपको ये वक्ष्यन् बारह गुण ही वश में करने में समर्थ नहीं हो सके आपकी प्रसन्नता के लिये तो भक्ति का होना परमावश्यक है, ये बारह गुण भी हो और साथ ही भक्ति हो, तब तो अहाँ, कहना ही क्या है, सोने में सुगन्ध हो जाय, किन्तु ये गुण ही और भक्ति न हो तो सब व्यर्थ हैं इसके विपरीत इन गुणों में से एक भी न हो और केवल भक्ति ही भक्ति तो भी आप प्रसन्न हो जाते हैं।

प्रभो ! भक्ति के सम्बन्ध में आपके यहाँ ग्राह्य और चांशल सभी समान हैं, इस विषय में आपके यहाँ भेदभाव नहीं। कार्य ग्राह्य हैं, वह धनी भी है, कुशीन भी है, प्रभावशाली, बलशाली, रूपवान्, विद्वान्, तपस्वी भी है, साथ ही पुरुषार्थ, आज्ञा, वेदशास्त्र, बुद्धिमान तथा योगनिष्ठ भी हैं इन बारह गुणों से युक्त हैं अथवा नाकण के जो पद्म, सत्य, दम, तप, अमासत्य, ई, चित्तिचा, अनसूया, यज्ञ, दान, धृति, और वेदाध्ययन ये बारह प्रव हैं, इन बारहों से सम्पन्न भी हैं अथवा श्रम, दम, तप, शौच, शान्ति, अलंकार, विरक्तता, ज्ञान, विद्वान्, सन्तोष, सत्य और आस्तिक्य ये जो बारह श्रेष्ठ गुण धराये हैं इनसे भी युक्त क्यों न हो, किन्तु इतने गुणों से युक्त होने पर भी यदि वह आपन्न भक्त नहीं है, मन्त्राजी को भी उत्पन्न करने वाले आप कमलतन्त्र

के चरणकमलों से विमुख है, उससे तो मैं उस श्रवण को श्रेष्ठ समझता हूँ, जिसमें वषट् क बारह गुणों में से तो एक भी गुण है नहीं, किन्तु निर्गुण होने पर भी उसने अपने मनको, अपनी समस्त इन्द्रियों को, अपनी वाणी को अपने समस्त कर्मों को तथा उसपर जो भी कुछ घन है उसे और अपने प्राणों को आपको अर्पण कर दिया अपना सर्वस्व आपमें ही लगा दिया है। उस चांडाल को बराबरी भक्तिहीन वेदविद् विप्र कैसे कर सकता है। इससे सो सिद्ध हुआ कि आपको केवल वर्ण सम्बन्धी श्रेष्ठता ही स्वीकार नहीं आपको तो भक्तिप्रिय वह चाहे चांडाल में हो विप्र में हो। आप अहंकारी से दूर रहते हैं। जिसे अहंकार नहीं गुणहीन है, जाति का भी अधम है, किन्तु उसने अपना सर्वस्व आप सर्वेश्वर को सर्वात्मभाव से समर्पित कर दिया है तो वह स्वयं भी पवित्र हो जायगा और अपने सम्पूर्णकुल को भी पावन बना देगा। उसके विपरीत जो अज्ञाति का है सर्वगुण सम्पन्न है, किन्तु उसे अपने बड़प्पन का भारी गर्व है, अपनी उत्तमता का अत्यधिक अभिमान है, तो ऐसा व्यक्ति अपने आपको भी पावन नहीं बना सकता, आपके पादपद्मों के पास तक नहीं पहुँच सकता। क्योंकि उसने अहंकार की भारी गठरी अपने सिर पर जो लाद रखी है। आपको अहंकार से चिढ़ है भक्ति से प्यार अनुराग है इसीलिये सर्वस्व समर्पण करने वाले अपने भक्तों के गुणों को तथा उनके वर्णों को आप नहीं देखते।

अच्छा, भगवन् ! यह कहा जाय, कि आप प्रशंसा प्रिय हैं, जो आपको पूजा प्रतिष्ठा करता है, अपना सर्वस्व आपको अर्पण कर देता है, आपको भूरि भूरि प्रशंसा करता है, सब कुछ आपको दे देता है, तो आप उस दान से प्रसन्न हो जाते हैं, सो भी बात नहीं। आपको भला कोई दे ही क्या, सकता है। गंगाजी

को कोई पानी पिलाना चाहे तो कहाँ से पिलायेगा। गंगाजी तो स्वयं ही सबको असुतोपम पय पिलाती रहती है, आप जगत् को देने वाले हैं, सबसे बड़े दाता हैं, आपको कोई दे ही क्या सकता है। आपको पूजा प्रतिष्ठा की आवश्यकता नहीं। आवश्यकता तो उसे हो, जिसको किसी वस्तु का अभाव हो, आप तो स्वयं ही परिपूर्ण हैं, आप काम हैं निज लाभ परिपूर्ण हैं। आप इन धूप, दीप, नैऋत, पान सुपारी आदि छुद्र वस्तुओं से छुद्र पुष्पों द्वारा दो हुई सामग्रियों से भला क्या प्रसन्न होंगे वे आपको समुष्ट करने में समर्थ कैसे हो सकेंगे फिर भी आप कठणावश केवल दया के बशीर्भूत अपने अनन्याश्रितों द्वारा की हुई पूजा को उनकी प्रसन्नता के निमित्त ग्रहण कर लेते हैं। फिर जो प्रभो! आपकी पूजा करता है, वह मानों अपनी ही पूजा करता है। कोई मनुष्य किसी उत्सव में किसी बड़े व्यक्ति को बुलाकर उसका सम्मान करता है, उसकी शोभायात्रा निकालता है, तो इससे तो सम्मान करने वाले की ही प्रतिष्ठा मिलती है, उसे मान सम्मान स्वयं ही प्राप्त हो जाता है, कोई अपने पिता को सुन्दर सुन्दर वस्त्राभूषणों से अलंकृत करता है, तो उसे गौरव स्वतः ही प्राप्त हो जाता है, कोई अपने गुरु की आज्ञा पालन करता है, तो उसको लोग सुरील गुरु भक्त परायण कहकर प्रशंसा करते हैं। कोई अपने मुख का शृंगार करके दर्पण में मुख देखता है, तो दर्पण के प्रतिबिम्ब का उसे पृथक् शृंगार नहीं करना पड़ता। जैसा जैसा शृंगार वह मुखपर करेगा वैसा ही वैसा दर्पण प्रतिबिम्ब को अपने आप ही प्राप्त होवा जायगा। इसी प्रकार भक्त आपके प्रति जो जो भी मान सम्मान प्रदर्शित करता है, वह उसे स्वतः प्राप्त हो जाता है।

स्वामिन् ! यद्यपि मैं समीगुण प्रपान असुरों में उत्पन्न हुआ हूँ, मैं अपम हूँ, मुझमें विद्या सुद्धि नहीं, फिर भी मैं आपके गुणों

के गान का दुस्साहस करता हूँ, अपनी बुद्धि के अनुसार आपकी महिमा वर्णन को दृष्ट होआ हूँ। बिना किसी शंका के आपको स्तुति करने में प्रवृत्त होता हूँ, वह वर्णन कुछ आपके लिये नहीं, आप आपर महिमा वाले की महिमा का कोई वखान कर भी क्या सकता है, जैसे कोई अरब खरबपति है, उसे कोई लाकर कुछ ताम्र खण्ड दे दे, तो उसे उन्हें पाने में क्या प्रसन्नता होगी, हाँ देने वाले का सन्तोष भले हो जाय, कि मैंने उन्हें कुछ न कुछ अर्पण किया। इसी प्रकार आप गुणों का आकर हैं, यह अल्पमत वाला मानव आपको गुणगान करके ही सन्तुष्ट कैसे कर सकता है, फिर भी सदा से सभी लोग आपका गुणगान करते ही हैं, कारण कि आपके गुणगान करने से अविद्या का नाश होता है। इसीलिये अपने को पावन बनाने के निमित्त अपनी अविद्या की ग्रन्थि को खोलने के लिये समस्त संशयों के नाश के निमित्त अपने कर्म बन्धनों को काटने के हेतु तथा संसार चक्र से मुक्त होने के लिये आपकी स्तुति करने को प्रवृत्त हुआ हूँ। आशा है मुझे आप स्तुति करने की शक्ति प्रदान करें।

सुसजी कहते हैं—“सुनियो ! इस प्रकार प्रह्लादजी ने आरम्भ में अपनी विनय दिखाकर स्तुति की भूमिका बाँधकर फिर दिव्य स्तुति की। अब आगे जैसे दिव्य स्तुति करेंगे उसे मैं आगे अध्याय में कहूँगा।”

छप्पय

भगवन् ! धन, बल, श्रेष्ठ, ज्ञान विद्या पौरुष ।
भी, कुल, योग, प्रभाव, रूप, गुण ये वर दास्य ॥
भक्ति बिना ये नहीं आपुर्क नाथ ! रिक्तये ।
भक्तिहीन वर विप्र पाद गुन अति श्रवणे ॥

पशु गज भक्ति प्रभावतै, नाम लिखे भव तरि गयो ।
इस्तुति करि वे अक्षर है, साहस प्रभु तारै भयो ॥

पद

नरहरि ! भक्ति तुमहिँ अति प्यारी ।
भक्ति बिना गुन यों सब सुने, क्यों पट विटु घर नारी ॥१॥
विप्र कुलीन, धनी, तप बलशुल, रूप, वेज व्रतधारी ।
विद्या, विनय, योग, धी गुन सब, रिक्तवै नहिँ अक्षुरारी ॥२॥
गजको बिनती म्रनत ई दोरे, गनिफा कुलटा वारो ।
अभिमानी सँकषार बुवाये, प्रभु भक्तनि भयहारी ॥३॥
हैं अति नीच बिनय विद्या नहिँ, इस्तुति करूँ तिहारो ।
मगतषड्ग प्रभु पार लगाओ, चरनकमल बलिहारो ॥४॥



प्रह्लाद कृत नसिंह स्तुति(२)

(५३)

सर्वे ह्यभी विधिकरास्तव सत्त्व धाम्नो-
ब्रह्मादयो वयमिवेश न चोद्भिजन्तः ।
क्षेमाय भूतय उतात्मसुखाय चास्य
विक्रीडितं भगवतो रुचिरावतारैः ॥६७॥

(श्री भा० ७ स्क० ६ अ० १३ श्लो०)

छप्पय

अधुर अति करयो द्रोह कोह अब नरहरि त्यागे ।
सुमिर जे तव रूप सकल भय तिनके भागे ॥
भये तुली सुर सकल असुरवर मारि गिरायो ।
देसि विकट विकराल रूप भय सुर हिय ज्ञायो
वदन भयंकर मुकुटि रिस, दाढ़ उग्र सग आत गल ।
खिचियो तनु रिपु रक्त तै, भय न मोह तव कृपा बल ॥
प्रियता प्रेम में होती है, वस्तुओं में नहीं । अपना प्यारा कैसा
रो हो, कैसे भी उस की भयंकर मूर्ति हो, सब से सुन्दर लगेगा

प्रह्लाद जी भगवान् रुसिंह की स्तुति करते हुए कह रहे हैं—हे
नामिर ! ये जो ब्रह्मादि देव हैं ये सब के सब आप के आशनुवर्त
: । इसअधुरों की भाँति आप से द्वेष भाव नहीं रखते । और हे प्रभो ! आप
भेषिप प्रकार के जो ये रुचिर-मनोह-अवतार धारण करते हैं भाति
गति की लीलायें करते हैं ये भी, बिम्ब के कल्याण के निमित्त तथा
इष्टाव और आत्मपुल के लिये ही करते हैं ।

जिसमें आपनापन नहीं, प्रेम नहीं, निजत्व नहीं, वह कितना भी सुन्दर क्यों नहीं, वह अपनी ओर अधिक आकर्षित न कर सकेगा।

सुतजी कहते हैं—“मुनियो! नृसिंह भगवान् की स्तुति करते हुये प्रह्लाद जी कह रहे हैं—“प्रभो! ये ब्रह्मादि देव आप के इस अति विकराल महा भयंकर भयावह रूप के कारण भयभीत हो रहे हैं ये आप के सम्मुख आने से भी हिचकिचाते हैं, दूर से ही दंडवत प्रणाम करके हट जाते हैं। इन सब ने आप के समीप मुझे भेजा है। स्वामिन्! देशताओं को भयभीत करना तो आप का अभीष्ट नहीं है। आपने तो असुर को मारने के लिये ब्रह्मा जी के वरों को सत्य करने के लिये ऐसा विचित्र वेप बनाया था। जिस कार्य के लिये रूप बनाया था, वह कार्य समाप्त हो गया। असुर राज मारा गया, फिर आप अपनी भ्रुकुटियों को क्यों चढ़ाये हुये हैं, कोष की सुद्रा क्यों धारण किये हुये हैं। देवता तो आप के अनुयायी हैं, आह्वानुवर्ती हैं, आप क अनुरासन में चलने वाले हैं, ये हम असुरों की भौति आप से ईर्ष्या तो नहीं करते हैं हम लोगों की भौति ये आप को अपना अरि तो नहीं मानते, फिर इनकी ओर आप कृपा की कोर क्यों नहीं करते। इन्हें अभयदान क्यों नहीं देते? यह सत्य है, आपका कोई भी रूप भयानक नहीं, सभी रूप सुन्दर हैं कोई भी लीला दीभत्व नहीं सभी मनोहर हैं, हृदय को हरन वाली हैं, भक्तों को खुश देते वाली हैं, फिर भो प्रभो! आपने जो यह उग्र रूप रखा है उसका उप संहार कीजिये। कोषी को परास्त करने के निमित्त कुछ कोष की सी सुद्रा भक्षित करनी ही होती है कार्य समाप्त होने पर उसकी समाप्ति हो जाती है। साधु स्वभाव के लोग स्वयं किसी क्रूर को भी अपने हाथों बंध नहीं करते, किन्तु कोई दूसरों को दुःख भय तथा उद्बेग पहुँचाने वाला सर्प विच्छेद के

समान कोई हिंसक जन्तु है, और उसे कोई अन्य चार पैदा है, तो साधु पुरुष उस का अनुमोदन ही करते हैं, दूसरों को दुख देने वाले के निधन पर आन्तरिक प्रसन्नता ही प्रकट करते हैं। सभी लोग असुराधिप मेरे पिता के कारण दुखी थे, भयभीत थे, अब वे आप के द्वारा उनके मारे जाने पर प्रफुल्लित हो रहे हैं, अब वे आनन्द मना रहे हैं अब वे सब भी, आप की आनन्दमयी मुद्रा का नयनोक्त करने के आकुल हो रहे हैं, प्रभा ! आप इन्हें अपने सौम्य रूपका दर्शन कराइये। इनके भय को हटा दें।

स्वामिन ! आप बहुत समर्थ हैं इन वैश्वदानव और देव-ताओं के सदृश मैं भी आप के इस उग्र रूप से भयभीत हो रहा हूँ। मुझे तो इस रूप से तनिक भी भय नहीं है। हे अजित ! परन्तु श्री कृष्ण के सदृश जो वह आपका अंग कृप के सदृश भयंकर सुख मुझे खिले हुये सदृश दल कमल के सदृश प्रतीत होता है। खन जाग उठती हुई आप की बड़ी भारी बाहर निकली हुई जिह्वा मुझे परमा सुन्दर दिखाई दे रही है। ये सूर्य सदृश पक्षी बड़ी प्रकाशमान भयंकर आँखें मुझे शीतल अमृत की वर्षा करती हुई चन्द्रमा की चाँदनी के सदृश प्रतीत हो रही हैं। चक्र हुई भ्रुकुण्डलों का आरोप अर्थात् वेग मुझे माता के प्रेम कोप के सदृश भगवत होता है। धड़ी बड़ा खूँटा सी भयंकर दाँड़े जिनमें रक्त लगा हुआ है मुझे बाहुिम के रक्तम दाँतों के सदृश दिखाई दे रही है। असुरराज के पेट से नि.ली आँतों की बीभत्स माला उसे रक्त वस्त्र की माला सी प्रतीत हो रही है। शरीर पर मोथा पर तथा बड़े बड़े बालों पर रक्तम सटा कलाप है अर्थात् रुधिर की केसर सी प्रतीत हो रही है, वह मुझे ऐसा लग रहा है कि आप के मोती के सदृश स्वरुद्ध श्वेत धवल यश चांदर के बीच बीच में लाल जड़ दिये हैं। आप के जो संधि खड़े हुए

शंकु सदृश गोल दोनों कान ऐसे लग रहे हैं मानों आप बड़े बड़े दो कमल पुष्पों को सिकोड़ कर लगाये हुए हैं। आप का यह जो निम्नजों को भी भयभीत करने वाला भयंकर सिंह नाद है, वह ऐसा लगता है कोई निषाद स्वरमें मधुर गान कर रहा है। आपके ये शत्रु-उदर भेदन कारी शूल के सदृश बड़े बड़े नख मुझे ऐसे प्रतीत होते हैं मानों अपनी उंगलियों में कौड़ा के निमित्त कमल नाल खोंस रहीं हों। देखने में तो ये सब वस्तुएँ आप का ऐसा भयकारी स्वरूप परम भयंकर प्रतीत होता है, किन्तु मुझे तो पड़ा ही प्यारा प्यारा लगता है, मुझे तो इससे तनिक भी भय नहीं। हाँ प्रभो! आप के इस रूप से भले ही भय न हो, फिर भी मैं एक बात से भयभीत बना ही हुआ हूँ। हे कृपणवत्तल! हे दीनवन्द्यो! हे अशरण शरण! मैं इस अति उग्र दुःसह संसार चक्र से भयभीत हूँ। जन्म मरण के लेश से क्लेशित हूँ। बार बार जन्मना और बार बार मरना इस से मैं आकुल हो उठा हूँ। ये कर्म रूप पिशाच ये भयंकर बाधक मुझे जकड़े हुए हैं। सञ्चिन्त, प्रारब्ध और क्रियमाण इन तीनों बहेलियों ने मुझे बाँध कर भवाटवी रूप सयङ्कर बन में भोग रूपी दिक्कत पशुओं के बीच में पटक दिया है। ये केवल संसृति का अन्त नहीं करते और सभी दुर्गति करते रहते हैं। नाना रूपों में परिवर्तित करते हैं, नाना नाच नचाते हैं, भौंति भौंति के भय दिखाते हैं, बारबार उराते धगकाते हैं। इस भवाटवी में पड़ा हुआ मैं भय के कारण थर थर काँप रहा हूँ। प्रभो! इस भवाटवी से निकालकर मुझे अपने सुखदायी, अभयप्रद, आनन्ददायक, मंगलदायी, चरखकमलों की शीतल छाया में सुला लीजिये। वन मोक्षप्रद पादपक्षों के निकट मुझे आश्रय दीजिये। हे दीनवन्द्यो! हे कृपावरुणालय! इन दिक्कत जन्तुओं से तथा बीभत्सवृत्तियों से बचाइये। प्रभो!

इस भवाटवी में मैं अत्यन्त ही दुखी हूँ, अत्यधिक क्लेश उठा रहा हूँ।

दयालु ! न जाने मैं कशों कहाँ भटकता किंग। किम कि ल योति में गया। क्या क्या वेप बनाये, कितने कितने वस्तुओं को अपनी कहकर उनका सम्रद किया। सुख पाने की इच्छा से वस्तुओं को जोड़ता ही गया इकट्ठा ही करवा गया, किन्तु सुख नहीं मिला। उस सम्रद ने भी दुःख ही दिया परिमह का परिणाम भी लेशाकारक ही सिद्ध हुआ। अभिय के संयोग से तथा भिय के वियोग से जिस शरीर में भी गया नहीं सङ्पत्ता ही रहा, न्याकुल ही बना रहा, असन्तुष्ट ही रहा, शोकानल से सन्तप्त हीकर दुखों ही बना रहा। उस दुःख का मंदने के लिये ये जो सपाय किये वे भी दुःखदायी ही सिद्ध हुए। कीचड़ को घोलने के लिये कीचड़ लगायी उससे और अधिक कीचड़ लग गयी। मेरा तो भीमशेष ही विपरीत हुआ। मैंने ये जो रेह गेह, स्वजन बन्धु-बान्धव अनात्म पदार्थ हैं, उनमें आत्मशुद्धि कर ली। असत्य को सत्य मानकर चलने से सोधा मार्ग कहाँ मिलेगा। फिर तो भटकना ही पड़ेगा। सो, हे मेरे जीवन सर्वस्व ! बहुत समय से मैं इस भवाटवी में भटक रहा हूँ, बिरकाल से व्यर्थ चक्कर काट रहा हूँ। नाथ ! अब तो मेरा भटकना बन्द कर दीजिये, मुझे अपना अनुचर किंकर, सेवक तथा दास बना लीजिये, मुझे दास्यभाव का पाठ पढ़ा लीजिये।

आप पूछेंगे, दास बनने में क्या रक्खा है, दास्यभाव से क्या होगा ? तुम स्वामी क्यों नहीं बनते। सो, हे मेरे स्वामिन् ! स्वामी तो सबके एकमात्र तुम ही हो। सबके सच्चे सुहृद्, स्वामी, सखा तथा सर्वस्व आप ही हो, सबके पूरम देवता आप ही परमेश्वर हो। जब मैं आपका दास हो जाऊँगा, तो मुझे आपके चरण

निकट निवास करने का सुयोग प्राप्त हो जायगा। वहाँ और भी तो आपके दास निवास करते हैं। उन श्रेष्ठतम प्राचीन दानों का उन आपके अनन्य आश्रितों का, आपके युगल कमल चरणों में निधाम करनेवाले परमज्ञानी भगवन्मत्तों का मुझे सत्संग प्राप्त होगा, उनके सहवास का सुअवसर पाकर मैं धन्य हो जाऊँगा, मेरे रागादिगुणों के बन्धन ढोले हो जायेंगे। मैं राग मोहादि से विमुक्त बन जाऊँगा, फिर मुझे एक ही कार्य रह जायगा, मभी चिन्तायें तो राग द्वेष, लोभ मांहादि के कारण हो होती हैं उनसे मैं सर्वथा विमुक्त हो जाऊँगा, तब तब जो मेरे पूर्व के दास करके आये हैं वसी कार्य को करूँगा। आपकी लीला कथाओं का श्रवण तथा गान करूँगा। जिन कथाओं का ब्रह्मादि देवों ने अत्यन्त श्रद्धा भक्ति से गान किया है, उन्हीं को गाकर मैं बात की बात में सुगमता सरलता के साथ इस संसार सागर को पार कर जाऊँगा।

हे सर्वाधार ! जिसकी आप रक्षा करते हैं, उसकी तो रक्षा होती है, फिर चाहे आप किसी को भी निमित्त बनाकर रक्षा करें किन्तु आप यदि उपेक्षा कर दें, तो लोक में सन्तप्त पुरुषों की जो दुःख निर्मुक्त के उपाय बताये हैं, वे सब व्यर्थ हो जावे हैं। जैसे बालकों के रक्षक पालक माता पिता बताये हैं, वे ही शिशु के पालन पोषण कर्ता हैं, किन्तु यदि आप उसकी रक्षा करना नहीं चाहते, तो लाख माता पिता पूरे प्रयत्नों से रक्षा करें तो भी आपके द्वारा उपेक्षित बालक की रक्षा नहीं हो सकती। गेहों का उपाय आपधि है, किन्तु आप जिस रोग को अच्छा नहीं करता चाहते, उसके लिये सुन्दर से सुन्दर औषधियाँ, समुद्र से निकला साजान् असुत भी व्यर्थ हो जाता है, किसी भी औषधि उसे अच्छा नहीं कर सकती। समुद्र में डूबते हुए नौका बचाते में समर्थ समझी जाती है, जिसे आप ही उबारना न चाहें, उसके

लिये चाहें जितनी नौकायें क्यों न आ जायँ, वह नौकाओं के रहते हुए भी डूब जायगा। देखा गया है समस्त अतुकूल साधनों के रहते हुए भी फल विपरीत हुआ है, इससे यही सिद्ध हुआ कि सबके एकमात्र रक्षक आप ही हैं आप जिसे तारना चाहेंगे वह तरेगा, जिसे डूबान चाहेंगे वह डूबेगा। सो, हे प्रभो ! मैं एकमात्र आपको ही शरण में आया हूँ।

हे जगत् पिता ! संसार में जितने कर्ता हुए हैं, वे चाहे प्राचीन हों, या नवीन, पर हों या अपर उनके द्वारा जो भी कुछ हुआ है या होगा, वह आपका ही स्वरूप है। जैसे ब्रह्माजी ने काल की प्रेरणा से, या पिता माता ने पुत्रेष्ट्या या कामेष्ट्या से प्रेरित होकर जो उत्पन्न किया वह आपका ही स्वरूप है, ब्रह्माजी ने प्रकृति में गर्भका आधान किया पिता ने पत्नी में। वह सब भी आपकी ही प्रेरणा से हुआ ब्रह्माजी ने अपने कल्प के आदि में पिता ने अतुकाल में जब भी किया आपकी ही प्रेरणा से। इसी प्रकार जिस वषट्करण द्वारा किया गया, जिसका भी किया गया जिससे किया गया जिसके लिये किये गया, जिस प्रकार भी किया गया, जो कुछ उत्पन्न किया गया, अथवा नवीन उत्पन्न न करके रूपान्तर ही किया गया, बदला ही गया वह सभी आपका ही रूप है, आपके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। कर्ता, कर्म, करण, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण और सम्बोधन रूप में आप ही आप हैं, ऐसे सर्वस्वरूप प्रभु के पादपद्मों में मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ। प्रभो ! मुझे इस भवसागर से पार लगाइये। मुझ डूबते हुए को करावलम्ब दीजिये।

सूतजी कहते हैं—“मुनियो ! इस प्रकार प्रह्लादजी ने अपने
छद्म की प्रार्थना की अब आगे जैसे ऐश्वर्य की तुच्छता बतावे
हुए प्रार्थना करेंगे, उस प्रसंग को मैं आगे कहूँगा ।”

छप्पय

भगवन् ! अति भयभीत भयो भव जनम मरन तैं ।
भटकत हतउत फिहँ सदाश्रो कमल चरन तैं ॥
सब पुरुषनि सहवास कहे बनि दास तिहारो ।
मुनि मुनि लीला कथा तहँ सब नाथ ! सहारो ॥
जननी शिष्ट भेषज दजहिँ । इबतहुँ नौका नहीं ।
रक्षक तुम बितु हे सकें, सबके रक्षक आपुहो ॥

पद

नरहरि ! सरल रूप अब धारो ।
मारयो असुर बिकट तनु धरि हरि, अब जग यश विस्तारो ॥१॥
थर थर कापत सुरगन सधरे, लखि यह रूप विहारो ।
भगवन् ! भय मोह नहिँ नेरहु, भवमानार तैं तारो ॥२॥
मेरे माता पिता नरो भय, जगम मरन भय टारो ।
परवश समुक्ति मयनिहूँ रक्षामी, तुमगे नयो सहारो ॥३॥
दे शिव ! तुम बितु शत्रु सम मयहो, तुम जीवन संचारो ।
जब तैं चरन शरन प्रभु लोगहीं, भय भनि मयो हमारो ॥४॥

प्रह्लाद-कृत नृसिंह स्तुति(३)

(५४)

माया मनः सृजति कर्मभयं बलीयः,

कालेन चोदित गुणानुमतेन पुंसः ।

अन्दीमयं यदजयार्पित पोडशारम् ,

संसारचक्रमज्ज कोऽतितरेत्त्वदन्यः ॥ॐ॥

(श्री भा० ७ स्क० ६ अ० ८१ श्लो०)

छप्पय

माया मनकुँ रेचै यही भव पन्थ पुगवै ।

येर कोरह माहि जनेम पुनि पुनि करववै ॥

मायाके प्रसु ईश बरजि नटिनोकु दीजे ।

मर बन्धनकुँ काटे, लीये चरननि में लांजे ॥

पुन, वैभव, यश, स्वर्ग सुख, अभिलाषा नहि नाथ हो ।

कथ कोरतन मह मुलनि, तब दावान का साथ हो ॥

* नरहरि भगवान् की स्तुति करते हुए प्रह्लादजी कह रहे हैं—
भगवर ! जब कालके द्वारा तीनों गुणों में जोष होता है और आपके अंश
अतः पुरुष की दृष्टि पड़ती है तब माया मन प्रधान लिंग देहको रचन
करती है । यही कनयान, अत्यन्त हृदयवान्, अगुण्य विषय तथा वेदमन्त्र
अविचारित सोलह प्रकार रूप-धारासे युक्त संसार बन्ध है । ओ हे अन्ध !
आपके अतिरिक्त इस संसार बन्धका कोन तर सप्रदा है ।
आपको कोन पार पहुँच सकता है ।

मानव अपने छुद्र अनित्य तथा क्षण भंगुर ऐश्वर्य के पीछे उन अजन्मा के महान् शारवत तथा सदा सर्वथा समान भाव से रहने वाले ऐश्वर्य को भूल जाता है। वास्तव में तो भगवान् के अपार ऐश्वर्य की कोई तुलना ही नहीं हो सकती। इन संसारी भोग वासनाओं से मन हटे तभी वह भगवद्भास्य का अद्वैतुकी भक्ति का अधिकारी बन सकता है।

सुतजी कहते हैं सुनियो ! तुसिंह भगवान् की स्तुति करते हुए प्रह्लादजी कह रहे हैं—“प्रभो ! मेरा मन इन संसारी भोगों की ओर दौड़ता है इस अगाध अपार भवसागर में डूबना चाहता है मैंने सब ओर दृष्टि पाव किया सबसे सहायता की याचना की किन्तु कोई ऐसा दिखायी नहीं दिया जो इस भवसागर से बारलगादे, जो इस चन्धन से छुड़ा दे, जो हृदयते हुए को बचा ले। आप ही एक पार लगाने वाले दृष्टिगोचर होते हैं। आप के अतिरिक्त न कोई पार जा सकता है न आप से पृथक् रह कर कोई पार पा ही सकता है।

यह आपकी क श्रियुग मयी माया है। यह कल्पान्त में सो जाती कल्पपर्यन्त अचेतन बनी रहती है। जब इसके वैतन्य होने का समय आता है तो काल देव जाकर इसे शुद्धगुदावे हैं। उस शुद्धगुदी से इसके चित्त में कुछ लोभ होता है। इसके गुणों में विषमता आती है। किन्तु जब तक आपका पुत्र इसकी ओर दृष्टि पाव नहीं करता जब तक आपका अंश भूत पुरुष भास नहीं मिलाता तब तक यह कुछ कर नहीं सकती। पुरुष की दृष्टि मात्र पड़ते ही यह गर्भिणी हो जाती है और मनः प्रधान लिङ्गदेह की रचना करती है। जो अत्यन्त ही बली है। सबसे अधिक भागने दौड़ने वाला है जो कर्म करने में समर्थ है। जो माया मोहित जीव अभिलाषा युक्त है। जैसे पद्म माया अक्षरों से बंधे रहते हैं ऐसे ही यह जीव पुण्य पाप आदि कर्मों

से आवद्ध है। जो सात्विक राजस तामस त्रिगुण्य विषय वाले भौतिक कम कलाप में आसक्त है। यह एक बड़े ही तीक्ष्ण धार वाले और के सदृश है जो घूमता रहता है। जिसमें अविद्या द्वारा अपित सोलह विकार रूप भरा है फार है। शब्द रूप रस गंध स्पर्श पाँच कर्मेन्द्रिय तथा पाँच ज्ञानेन्द्रिय और एक मन इसप्रकार १६ धार वाला यह चक्र है। इस संसार चक्र को पार करने में अन्य कोई समथ नहीं। जो आपका अनन्य सेवक होगा। अनन्य दासतया अनन्योपासक होगा वही इसे पारकर सकता है।

स्वामिन् ! यह सोलह बेलनों वाला एक यन्त्र है। जैसे यन्त्र में ईल के घड़े डालकर घे पेरे जाते हैं। ऐसे ही संसार चक्र मुझे भोगों में घुसाकर पेरे रहा है। आप हा इससे मेरी रक्षा कर सकते हैं। क्यों कि आप ईश्वर हैं सर्व समर्थ हैं। बुद्धि के जितने गुण हैं उन सब पर अपनी चैतन्य शक्ति द्वारा सदा सर्वथा विजय पाने वाले हैं। इस माया का नियन्त्रण काल ही तो करते हैं और काल आपके अतिरिक्त कोई अन्य है नहीं अतः काल रूप से आप साध्य साधन को अपने अधीन रखते हैं। अतः इस संसार चक्र में डालकर पेरे जाने वाले जीवों को उनसे बचाने में आप ही समर्थ हैं। इस चक्र में सभी जीव पेरे जा रहे हैं किन्तु जो आपके अनन्य है। शरणागत हैं, प्रपन्न हैं। वे बच गये हैं वे पृथक् पंक्ति में आनन्द से बैठे हुए हैं प्रभो! मुझे भी उसी पंक्ति में बिठा दीजिये। मुझे अपने पाद पद्मों के समीप खींच लें। अपने चरण कमलों की धन छाया में आश्रय प्रदान करें।

आप कहेंगे, अरे यह क्या माँग रहा है, संसार के बड़े से बड़े सुखों को क्यों नहीं माँग लेता। लोक पालों के सदृश कल्पान्त आयु माँग ले। स्वर्गीय सुखों को माँग ले अर्चचला स्थायी

सम्पदा माँग ले, सचसे पड़ी विभूति माँग ले और, इन सबको लेकर तुमों का उपयोग का मो भोगवन् ! इन्, सबकी निस्सारता तो मैं प्रत्यक्ष ही देख चुका हूँ। जो लोग इनका स्वरूप जानते हैं, उनसे अपरिचित हों, वे भले ही इन वस्तुओं के लिये कृतार्थ हो रहे हों किन्तु प्रभो ! आपसे इन तुच्छ वस्तुओं का याचना की जाय तो यह बड़ा भारी दुर्भाग्य ही होगा। ये वस्तुएँ अथर्व ही तप से प्राप्त होती होंगी किन्तु इनका मूल्य ही क्या ! जो उनसे भी बला आया उसी ने क्षण भर में इन्हें नष्ट कर दिया। मेरे असुर राज पिता ने ही कितने ही लोक पालों के गर्व को खर्च कर दिया कितने सम्पत्ति शालियों को धूम्र में गिरा दिया कितने विभूति वालों को धूम्र कर दिया। मेरे पिता को इन्हें नाश करने में कोई प्रयत्न परिश्रम या प्रयत्न नहीं करना पड़ा था उनके तनिक से काय युक्त हास्य से उनकी तनिक सी श्रुति बिलास से इनका अन्त हो गया, बालू की भीति के समान जंगलों लगाते ही ये सब ढूँढ़ गये तो फिर इतनी तुच्छ वस्तुओं के लिये आपसे याचना कैसे, तो मुझसे अधिक अभिमान और कौन होगा ? मुझसे बढ़कर दूसरा साथ अदृशाल और कहाँ मिलेगा ? जिन सबसे भ्रष्ट समझा जाने वाला श्री आसुर और विभूतियों को मेरे पिता ने कथं बना दिया उस चतने बड़े बलों मेरे पिता की सा आपने बात का बात में मार डाला, उसके चढ़े पैर को और इस उसकी आवा को निकाल लिया तो फिर आप से क्यों न किसी बड़ी वस्तु की आशा करूँ। जिन्हें असुर प्रकृत का पुरुष भी नष्ट करने में समर्थ हो सकता है। उनकी याचना आप असुर्य से क्यों करूँ ?

यदि मैंने इन सबका परिणाम प्रत्यक्ष न देखा होता तो संभव है मैं इनके सुलाभ में आ जाता। इनकी इच्छा कर भी बैठता, किन्तु इनका परिणाम तो मेरे नेत्रों के सम्मुख है। अब

मैं लोक पालों को तो बात हो क्या द्विपार्थ तक रहने वाले
ब्रह्मा जी की आयु भी नहीं चाहता। मैं ब्रह्मलोक तक के बड़े
से बड़े वैभव की भी वांछा नहीं करता। उत्तम से उत्तम इन्द्रिय
सम्बन्धी भोगों के लिये भी लाजान्वित नहीं न मुझे बड़ी से बड़ी
विभूति ही चाहिये। मुझे यदि आप कुछ देना ही चाहें तो
साधुओं की संगति ही दीजिये। अपने भक्तों की सूची में मेरा
भी नाम लिख लीजिये, अपने अनन्य सेवकों की गणना में मेरा
भी नाम सम्मिलित कर लीजिये। अपने दासों की पीक में मुझे
ले चलकर बिठा दीजिये। यह मेरे आप से एक मात्र
याचना है।

हे सुख स्वरूप भगवन् ! कोई अग्नि की भट्टी के समीप
रहकर क्या ताप से बच सकता है ? क्या कोई शृंग मरीचिका के
जल से अपनी रुपा शान्त कर सकता है ? प्रभो ! ये विषय-भोग
यः शृङ्गा के जल के समान देखने में आशावर्धक सुखदायी से
प्रतीत होते हैं, वास्तव में ये असत् हैं मिथ्या हैं परिणाम में
दुःखों को देने वाले हैं जिस शरीर से सुख भोगने की इच्छा की
जाती है वह एक रक्त रक्त और हड्डियों से बना नस नाड़ियों से
विजा पैला है, जिसके ऊपर केश रोम युक्त मांस ऊपर चढ़ा
दिया गया है, इस पैले में बिण्डा, मूत्र, कफ, खखार और भौंति
भौंति मल टूँस टूँस कर भर दुप है, रोगों को उत्पन्न करने का
यह पैला मुख्य स्थान है, रोगों का खेत है, व्याधियों का घर है।
सड़ने वाली दुर्गन्ध परिरक्षामी वस्तुओं से यह बना है। इस ऐसे
शरीर से मिथ्याओं को भोगते हुए यह जाव शान्त नहीं होता
विरत नहीं बनता, प्रसूत उसकी अभिलाषा और अधिक बढ़ती
ही जाती है। ये भोगभी सबको सरलता से सुलभ हो जाय, सो
भी पात नहीं। बड़े परिश्रम से अत्यंत कठिनता से ये सब प्राप्त
होते हैं, इसमें भी चारों ओर स्रप ही भय दृष्टिः गोचर होता है।

जैसे कोई मछु के लोभ से बट धुल पर चढ़ जाय और वहाँ उसे रीछ मिल जाय, नीचे उसकी लट पकड़कर उतरने की इच्छा से जड़ के समाप में सिंह बैठा हुआ दिखायी दे, पेरों के नीचे अधःकूप हो और उसमें लपलप जीभ करत हुआ काला भुजंग नाग बैठा हो, जिस बट के सूत्रों को लटकती हुई लटों का पकड़े वह लटका है उसे काले गार दाँ चूहे खाट रहे हो इतने पर भी जो कभी कभी मधुका छत्तासे टपकता हुआ मछु उसके मुख में पड़ जाता है, उसीके स्वाद के बशी भूत होकर नाना बटों को भेलता हुआ जैसे वह अंध में लटका रहता है, उसी प्रकार यह जीव भी विषय भोग रूपी मछुकों से अपना भोगेच्छा रूप अग्नि को शान्त करना चाहता है, इतने कष्ट भेल कर भी विरक्त होना नहीं चाहता, उसी से फँसा रहना चाहता है। यह कैसे आप की दुरःस्पर्धा माया है। प्रभो! मुझे इससे पार पहुँचाइये। मेरी संसारी वासनाओं को समाप्त करके अपने पाद पक्षों का आश्रय प्रदान कीजिये। यही मेरी एकमात्र अभिलाषा है।

सूतजी कहते हैं, सुनियो! इस प्रकार प्रह्लादजी ने इन अनित्यघन वैभव तथा सम्मान आदि की अनित्यता तथा दुःख रूपता दिखायी, अब वे जैसे आगे भगवान् नर हरि की कृपा का आभार प्रदर्शित करते हुए अपनी छल छल्यता का वर्णन करेंगे, वन प्रसंग को मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

वन वैभव परिनाम निहारे निज नेत्रनि हैं।
लोकपाल, दूर इन्द्र कैंपे पितु घन देयनि हैं ॥
इतनी प्रबल प्रचंड देख्य सुटकी में मारयो।
इच्छा नहिँ ऐश्वर्य नाथ। ही भव पय हास्यो ॥

थैला तन सल सूत्र को, मृगलुप्ता सम भोग सब ।
भोगत भटक्यो जनम बहु, लेख चरन की शरण अब ॥

पद

भव बन्धन तैं नाथ छुड़ायो ।
रैनि दिवस द्वे पाट कालक पिसत पास वैठायो ॥१॥
पको चले निरन्तर निसिदिन सबरो लोक पिसायो ।
काल समीप शोकभय नाहीं यह आदरख दिखायो ॥२॥
लोक पाल झूज सुरगान सबरे, सम पितु गरब घटायो ।
सो अति बली छली असुराधिप जिनमें मारि गिरायो ॥३॥
विषय भोग हैं, विषय सम सगरे, तनु घर रोग कहायो ।
रोग न शान्त अगिति बिन्दुनि तैं, प्रभु सेवक अपनायो ॥४॥

प्रह्लाद कृत नृसिंह स्तुति(४)

(५५)

काहं रजःप्रभव ईशतमोऽधिकेऽस्मिन्,

जातः सुरेतर कुले क तवानुकम्पा ।

न ब्रह्मणो न तु भवस्य न वै रमाया,

यन्मेऽर्पितः शिरसि पद्मकरः प्रसादः॥४॥

(श्री भा० ७ स्क० ६ अ० २६ श्लो०)

छप्पय

करुणाकर करि कृपा कमल कर तिर चरि दीयो ।

यह सोभाय्य न रमा, शंभु, अब देवनि लीयो ॥

असुर अघम अति अज्ञ आद अच्युत अपनायो ।

भाववत्स्व भगवान् कस्य तल भाव दिलायो ॥

सबके सबे तुहूँ हरि, अन्तरात्मा जगत के ।

जैच नीच को भेद नहि, वश होओ प्रभु भगत के ॥

भक्त जब अपने झुटता और भगवान् की सहसा का

अन्तःकरण से अनुभव करने लगता है, तब वह छुटार्थ हो

*नृसिंह भगवान् की स्तुति करते हुए प्रह्लाद जी कह रहे हैं—हे भगदीश ! कहां तो रजोगुण से उत्पन्न हुआ तमो गुण प्रधान देव दाम्बव कुलोत्पन्न मैं और कहां आप की अनुकम्पा ! आपने कृपा करके अपना वह परम प्रसाद स्वरूप वरद कर कमल मेरे शिर पर रखा है जिसे आपने न कभी मत्स्य जी के शिर पर रखा न महादेव जी तथा कन्दर्पो जी के हों शिर पर रखा है ।

जता है, वैसे तो सभी उन परात्पर प्रभु के अंश हैं, सब पर भगवान् का समान भाव है, भगवान् की कृपा छुट्टि बिना भेद भाव के सब पर सदा सर्वदा सब काल से हो रही है। अन्तर इतना ही है, जो अपनी स्थिति का और भगवान् की महत्ता को जानकर उसका अनुभव नहीं करते विषय लोगों को ही सब इस समझ कर उनकी प्राप्ति के निमित्त निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं, वे जहाँ के तहाँ ही रह जाते हैं, चौगुली के चक्कर में घूमे रहते हैं, कभी भाग्यवश पुण्य प्रभाव से इन्द्र धन जाते हैं, फिर श्रवाह में बहते चढ़ते कोट पतंग चँटा चँटी वन जाते हैं। उनका गमनागमन लगा ही रहता है। आवागमन से कभी छुटकारा नहीं पाते।

स्तुति कहते हैं—स्तुतियो ! भगवान् नृसिंह की स्तुति करते हुए कह रहे हैं। प्रभो ! कहाँ मैं और कहाँ आप ? कहाँ आप की महत्ता कहाँ हमारी सुदृढ़ता। कहाँ आप की अनुपम कृपा और कहाँ हमारी असीम कृतज्ञता। कोई तुलना ही नहीं, आकाश पताल का अन्तर है वताना भी अपर्याप्त है। आप की मुक्त अक्ष धालक पर इन्हीं भारी कृपा, इतनी अधिक अनुग्रह ऐसी अनुपम अनुकम्पा सोचकर महान् आश्चर्य हो रहा है। एक तो मेरा जन्म भी रजो गुण से हुआ है, जिन दिनों पिता जी वेवलाओं पर अत्यधिक क्रोध कर रहे थे, सबको अपने अभिमान में भर कर अपमानित करते थे उस समय मैं माता के उदर में आया। कुल परम्परागत संस्कार या सदाचार भी शुभ होता तो भी मेरी बुद्धि शुद्ध हो सकती थी। उत्पन्न भी मैं असुर कुल में हुआ, जो सदा काम क्रोध लोभ मोह जो रजो गुण तमो गुण के कार्य हैं उनमें सदा भरे रहे थे। असुर गण तम प्रधान आसुरी प्रकृति के दूसरों से ईर्ष्या करने वाले शरीर को ही सब कुछ समझने वाले, मित्रा आलस्य और प्रसाद में सदा निमग्न रहने वाले तथा

प्रह्लाद कृत नृसिंह स्तुति(४)

(५५)

काहं रजःप्रभव ईशतमोऽधिकेऽस्मिन्,

जातः सुरेतर कुले क तवानुकम्पा ।

न ब्रह्मणो न तु भवस्य न वै रमाया,

यन्मेऽर्पितः शिरसि पद्मकरः प्रसादः॥ॐ

(श्री भा० ७ स्क० ६ अ० २६ श्लो०)

छप्पय

कवनाकर करि कृपा कमल कर सिर धरि दीयो ।

यह तौभाग्य न रमा, शंख, अज देवनि लीयो ॥

असुर अधम अति अह अह अच्युत अपनायो ।

भाववस्थ भगवान् कल्प तरु भाव दिलायो ॥

सबके सथे सुखद हरि, अन्तरात्मा जगत के ।

जैच नीच को भेद नहि, वश होओ प्रभु भगत के ॥

भक्त जब अपने छद्मता और भगवान् की महत्ता का

अन्तःकरण से अनुभव करने लगता है, तब वह छुटार्थ हो

चिह्न भगवान् की स्तुति करते हुए प्रह्लाद जी कह रहे हैं—हे
अगदीश ! कहीं तो रजोगुण से उत्पन्न हुआ तमो गुण प्रधान देव
दानव कुलोत्पन्न मैं और कहीं आप की अनुकम्पा ! आपने कृपा करके
अपना मह परम प्रसाद स्वरूप वरद कर कमल मेरे शिर पर रखा है
लिखें आपने न कभी ब्रह्मा जी के शिर पर रखा न महादेव जी तथा
कल्मी जी के शिर पर रखा है ।

जाता है, वैसे तो सभी उन परात्पर प्रभु के अंश हैं, सब पर
भगवान् का समान भाव है, भगवान् की कृपा वृष्टि बिना भेद
भाव के सब पर सदा सर्वदा सब काल में हो रही है। अन्तर
इतना ही है, जो अपनी स्थिति का और भगवान् की महत्ता
को जानकर उनका अनुभव नहीं करते विषय भोगों को ही सब
कुछ समझ कर उनकी प्राप्ति के निमित्त निरन्तर प्रयत्नशील
रहते हैं, वे जहाँ के तहाँ ही रह जाते हैं, चौरासी के चक्कर में
घूमते रहते हैं, कभी भाग्यवश पुण्य प्रभाव से इन्द्र बन जाते हैं,
फिर प्रवाह में बहते चढ़ते कोट पतंग चीटा चीटी बन जाते
हैं। उनका गमनागमन लगा ही रहता है। आवागमन से कभी
छुटकारा नहीं पाते।

स्तुति कहते हैं—सुनियो ! भगवान् नृसिंह की स्तुति करते
हुए कह रहे हैं। प्रभो ! कहाँ मैं और कहाँ आप ? कहाँ आप
की महत्ता कहाँ हमारी तुलना। कहाँ आप की अनुपम कृपा
और कहाँ हमारी असीम कृतप्रता। कोई तुलना ही नहीं, आकाश,
पाताल का अन्तर है बताना भी अपर्याप्त है। आप की मुक्त
अज्ञ घालक पर इतनी भारी कृपा, इतनी अधिक अनुग्रह ऐसी
अनुपम अनुकम्पा सोचकर महान् आश्चर्य हो रहा है। एक
तो मेरा जन्म भी रजो गुण से हुआ है, जिन दिनों विद्या जी
देवताओं पर अत्यधिक क्रोध कर रहे थे, सबको अपने अभिमान
में भर कर अपमानित करते थे उस समय मैं माताके चदर में आया।
कुल परम्परागत संस्कार या सदाचार भी शुभ होता वो भा
मेरी बुद्धि शुद्ध हो सकती थी। वपन भी मैं असुर कुल में हुआ,
जो सदा काम क्रोध लोभ मोह जो रजो गुण उसी गुण के कार्य
हैं उनमें सदा भरे रहे थे। असुर गण तम प्रधान आसुरी प्रकृति
के दूसरों से ईर्ष्या करने वाले शरीर को ही सब कुछ समझने
वाले, निद्रा आलस्य और प्रसाद में सदा निमग्न रहने वाले तथे

हिंसा परापवाद में निरत रहने वाले हैं। ऐसे राज तम प्रधानकुल में सेरी उत्पत्ति हुई। इतने पर भी आप ने मुझ अधम पर अनुग्रह की, अनुग्रह भी साधारण नहीं अपनी गोदी में बिठाकर वात्सल्य रस से संसिक्त, अनुग्रह से आर्द्र कृपाभाव से परिपूर्ण, परम पुरुषार्थ स्वरूप सकल सन्ताप हारी आपना कर कमल सेर सिर पर स्वतः ही रख दिया। तब अब बताइये ऐसा सौभाग्य आज तक किसे प्राप्त हुआ होगा? इतना प्रेम प्रसाद सँसार में किसे मिला होगा।

मैं अनुमान करता हूँ, कि ब्रह्मा जी आप के सघने प्रिय सवसे जेष्ठ श्रेष्ठ आदि पुत्र हैं। पिता का जेष्ठ श्रेष्ठ सर्व गुण सम्पन्न योग्य पुत्र पर अत्यधिक प्रेम होता है ब्रह्माजी जो आप के नामि कमल से उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते ही भयभीत की भाँति आप की स्तुति करने लगे, आपने भी उन्हें तप करने का आदेश दिया। तपस्या से समर्थ हुए सृष्टि करने लग गये सघने पितामह बन गये, गम्भीरता आ गई। वे कभी आप की गोदी में बैठे हों इसका मैं अनुमान भी नहीं कर सका, आप ने अनुग्रह से परिपूर्ण अपना अभय भद्र वरद हस्त उनके मस्तक पर कभी रखा होगा इसमें सन्देह है।

दूसरे सघने गढ़े देव भव हैं-रुद्र देव हैं, वे ब्रह्मा जी की भ्रुकुटि कोढ़कर उत्पन्न हुए। होते ही रोने लगे। रथान, नाम, बड़ आदि माँगने लगे। ब्रह्माजी ने यह सघने दे दिया, वो वे लगे भूल भोव पिशाच और कर्तों की सृष्टि करने। कभी आप ने उन त्रिनेत्र की गोद में बिठाकर मुँह चूमकर प्यार किया होगा, उनके सिर पर वात्सल्य पूर्ण श्री हस्त रखा होगा, इसमें भी सन्देह है। अब रही जगदम्बा लक्ष्मी देवी। अब उनके सम्बन्ध में वो मैं क्या कहूँ, वे आपको अर्धाङ्गिनी ही ठहरी। माता के

सम्बन्ध में पुत्र को कुछ कहने का भी अधिकार नहीं, किन्तु इतना अवश्य जानता हूँ आप ने वास्तव्य पूर्ण कर कमल तो उनके सिर पर कभी रखा ही न होगा। वास्तव्य रस का अधिकारी तो पुत्र ही होता है और मैं आप का पहिला पुत्र हूँ जिसे ऐसा देव दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हुआ है, फिर मैं अपने भाग्य की किन शब्दों में सराहना करूँ ?

प्रभो ! मेरे लिये तो यह बड़े ही सौभाग्य की बात है, किन्तु आप के लिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। आप कहेंगे, कि आश्चर्य की क्या नहीं है, इतने बड़े सब से श्रेष्ठ देवाधिदेव महादेव के सिर पर हाथ नहीं रखा, वेद गर्भ सर्वज्ञ प्रजापतियों के पति ब्रह्मा जी का भी तो सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ वह तुम्ह जैसे अधम असुर कुल में उत्पन्न छोटे से शिशु को प्राप्त हो गया ?

सो, भगवन् ! यह बात नहीं। उत्तम अधम श्रेष्ठ कनिष्ठ ऊँचा नीचा तथा छोटे बड़े का भेद भाव तो हम सारी जीवों में ही होता है। आप की दृष्टि में कौन छोटा कौन बड़ा, कौन ऊँचा कौन नीचा ? आप के लिये तो सभी समान हैं, सभी एक से हैं, आप असुर ही समझकर किसी की उपेक्षा नहीं कर देते। केवल उत्तम कुल में उत्पन्न होने के ही कारण बड़े छाती से नहीं चिपटा लेते। आप तो सर्वान्तर्यामी हैं, जगदात्मा हैं, सबके भीतर समान भाव से रहने वाले हैं सबके सुहृद् हैं, वन्धु हैं, प्रेम्त हैं। आप के लिये सभी एक से हैं बराबर हैं।

इतना सब होने पर भी भगवन् ! भावानुसार भक्तों में भी भेद तो ही जाता है। प्रत्यक्ष जगत् में देख ही रहे हैं, कोई सुखी है कोई दुखी है कोई अधिक कृपा पात्र है, किसी को सत्नी कृपा प्राप्त नहीं है। यह भेद भाव तो भगवन् ! सेवा के कारण

कृपा गठरी बाँधे ही रहते हैं, आप का द्वार तो सदा सर्वदा सबके लिये समान रूप से खुला ही रहता है, किन्तु कोई अभाग्य, लेने ही न आये तो आप क्या करें। आप किसी को मना नहीं करते कि तुम मत आओ। किन्तु जो कृपा लेना ही न चाहे तो आप कैसे दें। कल्प वृक्ष है, वह किसी प्रकार का भेद भाव नहीं करता। जो उसके नीचे जाय, वहाँ जाकर जो भी इच्छा करे उसे वही वस्तु प्राप्त होगी। कल्प वृक्ष के समीप रहकर भी जो उसके नीचे जाकर भी सिद्ध का चिन्तन करे उससे, भय करे तो उसे सिद्ध का भय ही प्राप्त होगा। इसी प्रकार जो आप की सेवा करते हैं, तो सेवा के फल स्वरूप उनमें सद् धर्म उत्पन्न होते हैं, उनके आचरण से आपको प्राप्ति होती है। इसमें मुखता सेवा भाव की है, कुलगात्र उच्चता नीचता, इसमें कोई भी कारण नहीं है। जो आप की सेवा सुश्रूषा में संलग्न रहे उसे आप सत्य स्वरूप की प्राप्ति होगी, जो विषय भोगों में संलग्न रहेगा इन्द्रियों की स्वादों की ओर दौड़ेगा वह संसार रूप में गिरेगा। आज अज्ञ लोग अमृत स्वरूप आप की भक्ति को छोड़कर संसार रूप अंध कूप में स्वेच्छा से गिरते जाते हैं जिसमें काष्ठ रूप चितकवना हो जिह्वाओं वाला सर्प बैठा हुआ जीभों को लपलपा रहा है। सारी लोग अंधे होकर दूसरों की देखा देखी उसी कूप में कूदते जाते हैं। कूदते जाते हैं।

हे प्राणायार ! हे परम श्रेष्ठ ! हे पवित्र पावन ! विषयाभिलाषी पुरुषों का साथ करने के कारण उनके संगःकूप से उन सब की देखा देखी में भी उस अंध कूप की ओर उनके पीछे पीछे जा रहा था, किन्तु उस समय एक बीणाचारी परोपकार निरत स्वार्थ रहित दृढ़ प्रती आप के अनन्य सेवक देवर्षि नारद ने मुझे अर्हंत की कृपा वश सचा लिया, उन्होंने अनामक

समझकर मुझे अपना लिया, उस अंध कूप में गिरने से रोके लिया, मुझे बल पूर्वक अपना बनाकर स्वाकार कर लिया, अपना उपदेशात्मक पान कराकर ज्ञानाब्जन को मेरी आँखों में आँककर उस गहन कूप का रहस्य प्रत्यक्ष दिखा दिया। वन्हीं का यह असौम अनुग्रह है कि आज मैं अच्युत का देव दुर्लभ द्रोण प्राप्त कर रहा हूँ। जिन हरि भक्तों ने जिन आप के अनन्त उपालकों ने जिन आप के दयालु दासों ने मुझे मुक्ति का मार्ग दिखाया, आप का साक्षात्कार कराया उन आप के भूत्यों की सेवा भला मैं कैसे त्याग सकता हूँ। मेरे तो सर्वेश्वर थे मगवद् भक्त हैं, वन्हीं का अनुकम्पा से तो यह अनुपम अवसर उपलब्ध हो सका है।

हे दयालो ! मेरे पिता का अभिमान बहुत अधिक बढ़ चढ़ गया था, पराकाष्ठा का पर पहुँच गया था, वे अपने को ईश्वर सर्वश्रेष्ठ महापुरुष मानने लगे थे। वे मुझे सारने को कटवद्ध हो गये थे, मेरा अन्त करने को कुत संकल्प थे, वन्हीं ने पुत्र स्नेह को तिलाञ्जलि दे दाया। हाथ में खड्ग लेकर और मुझे कस कर पकड़कर वे गरज कर बोले—“अब बता मेरे आतिथिक अब कौन तेरा ईश्वर है, यदि कोई है, तो उसे पुकार, अब आकर वह तेरी रक्षा करे, तुम्हें मेरे खड्ग के गहार से बचावे। मैं अपनी बेर निर को बड़ से धुंध कर रहा हूँ।” उस समय हे अनन्त ! आप न हा नृसिंह रूप रखकर मेरे प्राणों की रक्षा का और मेरे आततायाँ पिता का बध किया। आप ने इतना कष्ट क्यों किया ? क्यों आप कठोर खंभे से आपे नर और आपे सिंह होकर उत्पन्न हुए ?

मैं तो समझता हूँ आप अपने अनुगत अनन्योपासक नारद जी के वचनों को ही सत्य सिद्ध करने के लिये उत्पन्न हुए थे।

मेरे गुरु नारद जी ने मुझे उदर में ही यह सिखाया था, कि श्री हरि सर्वत्र हैं सब में हैं और सब कुछ करने में समर्थ हैं। उसी ज्ञान के आधार पर मैंने पिता जी के पूछने पर कह दिया था, कि मुझमें, तुममें, खड्ग में और खम्भ में सर्वत्र मेरे श्रीहरि विराजमान हैं, कोई ऐसा स्थान नहीं, कोई ऐसा काल नहीं कोई ऐसी वस्तु नहीं जहाँ वे न हों।" जब पिता खड्ग का प्रहार करना ही चाहते थे और आप फिर भी प्रकट न हुए तो मुझे नारद जी के वचनों पर कुछ शंका सी होने लगी। वस, यही बात आप को अस्वस्थ प्रतीत हुई। मेरे भक्त का भाषण असत्य हो प्रतीत हो सकता है। मेरे अनन्य उपासक की बात असत्य हो सकती है, इसी लिये आप तुरन्त ही पत्थर के खम्भ से धम्म से प्रादुर्भूत हो गये और अपनी भक्त वस्तुलता भक्तवत्स्यता सिद्ध करके दिखा दी। इसलिये मेरी दृष्टि में तो आप मेरी रक्षा के लिये नहीं मेरे गुरु के वाक्यों को सत्य बनाने के लिये अपने भक्त के वचनों को अटल अलीक बनाने के लिये उत्पन्न हुए थे। जिन भक्तों पर आप का इतना अधिक अतुराग है उनकी सेवा को मैं भूलकर भी नहीं त्याग सकता उनका मैं आप के ही समान आदर करता रहूँगा।

सुतजी कहते हैं—“मुनियो! इस प्रकार प्रह्लाद जी ने अपनी कृतकृत्यता तथा भगवान् की भक्तवत्स्यता का वर्णन किया, अब आगे वे जैसे जगत् और जगदीश्वर की बीज वृक्ष रूप से एकता का वर्णन करेंगे, उस प्रसंग को मैं आगे कहूँगा। आप उसे समाहित चित्त से श्रवण करें।

छप्पय

जग मोमनि में फँसे नरनि के संग दोष तैं ।
अन्य क्लृप्त में गिरत कस्यो गुण ज्ञान दोष तैं ॥
गुरु नारद उपकार नाथ नहिं कबहुं सुलाजें ।
तब दासनि नित पूजि चरन मई शीश सवाजें ॥
असि तैं पितु मारन चले, सत्य करन सेवक बचन ।
प्रकट भये प्रभु चम्प तैं, भगत बल्लल अशरन शरन ॥

पद

दासनि देवे देव बड़ाई !
कह अथ असुर अवम कुनसित कुम, कह प्रभु की प्रसुताई ॥१॥
जो सोभाग्य दयो सेवक कूँ, नहिं ताकी समताई ।
नहिं पायो अज शंभु सुरेश्वर अरधाङ्गनि श्री माई ॥२॥
भक्ति भाव तैं नरहरि रोमो, कवल गुन न सुझाई ।
तब दासनि पद पकरि पार हों, मारग दयो दिखाई ॥३॥
भक्तनि मन पूरन करिबे हरि अद्भुत देह दिखाई ।
प्रनव पाल प्रन पालक प्रभु जो, पद पदुमनि सिर नाई ॥४॥



प्रह्लाद कृत नृसिंह स्तुति

(५६)

एकस्त्वमेव जगदेतद्गुण्य यच्च—

माद्यन्तयोः पृथग्वस्यसि मध्यतश्च ।

सृष्ट्वा गुणान्यतिकरं निजमाययदम्,

नावेव तैरवसितस्तदनुमविष्टः ॥ॐ॥

(श्री भा० ७ स्क० ६ अ० ३० श्लो०)

छप्पय

जगत रूपं तुम बने गुणवितै जाह बनाओ ।

आदि मध्य अह अन्त आशुई आपु लखाओ ॥

हैकै एक अनेक दिखो मांयावरा स्वांमी ।

तुम बिनु और न कहू बीज दुप नामडु नाभी ॥

आओ जल जनम धिति, लय प्रकाश तद्रूप हो ।

तैसे तुम जग बनि गय, चीन हल फल फल सो ॥

नर जैसे आपनी माया से साना रूप बना लेता है, किन्तु वे

अप रूप उसी के होते हैं, उससे भिन्न कुछ नहीं होता । वहाँ के

कारण, तथा चित्र विचित्र रूप तथा वेप बदलने के कारण तथा

स्तुति करते हुए प्रह्लादजी कह रहे हैं—“हे प्रभो ! एकमात्र आप

ही इस सम्पूर्ण जगत् के रूप में हो गये हैं । इसके आदि में, अन्त में,

और मध्य में भी आप ही अवस्थित हैं । आप यद्यपि एक हैं फिर भी अपनी

माया से गुणों के परिणाम स्वरूप इस सम्पूर्ण जगत् की रचना करके और

इसके बाहर भीतर प्रीति प्रीति होकर उन गुणों के कार्यकलापों के कारण

बहुत से प्रतीत होते हैं ।”

बनावटी नाम रख लेने के कारण स्वतः उसके रूप में कोई विकार नहीं आता। वह तो बड़ी रहता है। नाम छुव, तथा उपा-
धिकृत भेद है, सो ये सब वस्तुयें क्षणिक हैं, परिवर्तनशील हैं,
अनित्य हैं अस्त है, सब काल में रहने वाली नहीं है। इन
वस्तुओं के माध्यम से जो नाता खेल दिखा रहा है वह नट ही
सत्य है, और सब प्रपञ्च है, विडम्बना है, खेल है, मनोरंजन है,
हस्तकौशल है।

सुसजी कहते हैं—“मुनियो! नृसिंह भगवान् कबे स्तुति करते
हुए भक्त राज प्रह्लादजी कह रहे हैं—“प्रभो! एकमूर्त तुम ही
सत्य हो, तुम ही शाश्वत हो, तुम ही चिरवत हो, और सब तो
आपका ही बनाया खेलमात्र है, सब आपका ही रूप है, आपका
ही माया बिनोद है। इस जगत् को आप ही बनाते हैं और आप
ही संहार करते हैं। बनाते समय आपको राग नहीं बिगाड़ते
समय इससे कोई द्वेष नहीं, बनाना खेल बिगाड़ना भी खेल।
बनाते समय हर्ष नहीं, बिगाड़ते समय विषाद नहीं। बनाना भी
मनोरंजन के लिये और बिगाड़ना भी मनोरंजन के लिये। एक
सिद्धान्त है जो आदि अन्त में होता है वही उसके मध्य में
भी रहता है। जैसे घड़े बनने के आदि में भी मिट्टी थी, घड़ा
बिगाड़नेपर भी मिट्टी ही रह जायगी, वो मध्य में जो घड़ा दीखता
है उसके नाग रूप की ओर ध्यान न दो वो मध्य में भी वह कुछ
मिट्टी ही मिट्टी है। खिलौना बनने के पहिले भी चीनी थी, खिलौना
बिगाड़ दो तो भी चीनी ही रह जाती है, बीच में जो चीनी के
दायी घोड़ा भिन्न भिन्न नाम रूप बलि दिखायी देने लगते हैं,
उनमें भी चीनी के अविरक्त कुछ नहीं। कटक कुण्डल बनने के
पूर्व भी सुवर्ण ही था उन्हें तोड़ दो गला दो तो भी सुवर्ण ही
रोप रहेगा मध्य में जो सुदो कटक कुण्डलादि आभूषण हो गये
हैं उनमें भी सोना ही सोना है। बीच पर विन्न यनाने के पूर्व भी

गेरू था, बिगाड़ दो तो भी बही रहेगा, बीच में जो विभिन्न नाम रूप वाले चित्र दीखते हैं उनमें भी रंगों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। इसी प्रकार हे भगवन् ! इस सृष्टि के पूर्व भी आप ही थे, सृष्टि का संहार होने पर ही आप ही रह जायेंगे, बीच में जो यह नाना नाम रूपों वाला प्रपञ्च दृष्टिगोचर हो रहा है उसमें भी सर्वत्र आपके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

हे अद्वय ! आप एक हैं, न आपके कोई समान दे न कोई दूसरा हो है, फिर भी आप माया के गुणों के परिणाम इस दृश्य प्रपञ्च इस विश्व ब्रह्माण्ड को रचकर उसमें अनुप्रविष्ट हो जाते हैं। जैसे मकड़ी स्वयं ही अपने मुख से सूत्र निकाल कर जाले की रचना करती है और स्वयं ही उसमें फिरोल करके आनन्द का अनुभव करती है, जब इच्छा होती है उस जाले को पुनः निगल जाती है, फिर से पेट में रख लेती है। इसी प्रकार माया के गुणों के जो—उत्पन्न होना स्थित रहना विलय को प्राप्त होना ये जो व्यापार हैं उनके द्वारा तथा सृष्टि के निमित्त ब्रह्मा बन जाना, रक्षा के निमित्त विष्णु बन जाना तथा संहार के निमित्त रुद्र रूप रख लेना ये जो अनेक रूप हैं इनके द्वारा अनेक से भासित होते हैं, बहुत रूपों में दृष्टिगोचर होते हैं।

हे जगदीश्वर ! यह जो कार्य कारणात्मक बगत् है सर्व असद रूप सम्पूर्ण संसार है, इसमें नाना रूप आपने दी पाये किये हैं। आप ही जगत् हैं और जगत् से भिन्न जगदीश्वर परम-पुरुष भी आप ही हैं। जब कार्य भी आप कारण भी आप और कर्ता भी आप ही हैं, तो यह मेरा है यह पराया है, यह जो द्वैत युक्ति है यह व्यर्थ है, अविद्या है माया है। संसार में यह सिद्धांत है जिसका जिस वस्तु से जन्म होता है, जिसमें स्थिति रहती है, अन्त में जिसमें लीन होता है और जिससे प्रकाश होता है वह उसी का रूप होता है। जैसे वृत्त कार्य है, बीज उसका कारण है।

बीज से ही वृक्ष बना, बीज ही वृक्ष धनके स्थित रहा, अन्त में वृक्ष का सपसंहार भी बीज में ही हुआ। वृक्ष का प्रकाश भी बीज के कारण ही है अतः वृक्ष बीज ही है। वसी का रूप ही है। जैसे मिट्टी से घड़ा बना। जब तक घड़ा रहा मिट्टी में स्थित रहा अन्त से मिट्टी में ही मिल गया। इसमें मिट्टी ही सत्य है। घड़ा मिट्टी का ही रूप है।

प्रभो ! जैसे सकड़ी जाले में जब तक रहती है उसमें खेलती है, जब निगल लेती है, तो एकाकीपन का आनन्द लेती है। इसी प्रकार आप इस निखिल प्रपञ्च को अपने उदर में समेट कर प्रलयकालीन जल में निरीह होकर एकाकी बनकर आत्म सुख का अनुभव करतेहुए सुखपूर्वक जेट लगाते रहते हैं, तान दुपट्टा छोटे रहते हैं। वह सोना आपका साधारण जीवां जैसा सोना नहीं है। संसारी जीवां की बिद्रा तो तमोगुण से अज्ञानमयी अन्धकार से ढकी रहती है, किन्तु आपकी निद्रा तो आत्म रूप के प्रकाश से प्रकाशित योगनिद्रा है। उस योगनिद्रा में अवस्थित होकर आप बाह्यदृष्टि को मूँद लेते हैं आप उस समय न जाग्रत अवस्था में हो होते हैं, न स्वप्नावस्था में और न सुषुप्ति अवस्था में ही, उस समय आप तुरीयपद में अवस्थित रहते हैं। उस समय सत्त्व, रज और तम का खेल समाप्त होकर गुणातीत अवस्था का सुख लेते हैं, उस समय ऊर्ध्वलोक, अधोलोक तथा मध्यलोक इन तीनों का ही विस्तार बिलीन हो जाता है आप अपने तुरीयपद वैकुण्ठलोक में स्थित रहते हैं। न तमोयुक्त होते हैं न विषयों के भोगने वाले अर्थात् तम और और गुणों का योग नहीं करते। उस समय आप अपने विशुद्ध सत्त्व स्वरूप में निमग्न रहते हैं।

हे विश्वविधायक ! यह जगत् वास्तव में है क्या ? प्रकृति के जो तीनों गुण हैं, वे ही कालराशि की प्रेरणा से क्षमिष्य होकर

ब्रह्मांड के आकार में परिणित हो गये हैं, ब्रह्मांड कुछ आपसे भिन्न तो है ही नहीं आपका ही देह है, शरीर है। जब आप निरीह होकर प्रलयकालीन जल में सोते हैं, यह सम्पूर्ण जगत् भी आपके ही भीतर चुपचाप पड़ा रहता है। सूखे बीज के समान रहता है। निरन्तर जल की चपेट लगते लगते इसमें कुछ गीलापन हो जाता होगा। सोते समय काल शक्ति प्रहरी का काम करती है। जब आपके जागने का समय होता है, तो काल-शक्ति शनैः शनैः आपके तलुओं को सुहलाती है, शेष की सुलभ शैया पर पड़े ही पड़े आप तनिक नयनों को खोलते हैं। काल शक्ति के संकेत को समझकर आप योगनिद्रा रूप समाधि की स्थापते हैं। आप देखते हैं, आपके शरीर में जो नन्हा सा जगत् का बीज पड़ा था, वह तो जल लगने से कुछ फूल सा गया है, उसमें से एक नन्हा सा अंकुर उत्पन्न होकर आपकी नाभि द्वारा बाहर हुआ। बाहर होते ही जैसे नन्हा सा बट का बीज विराल बट वृक्ष बना है उसी प्रकार उसने भी ब्रह्मांड, कमल का रूप धारण कर लिया। उस विराल नाभिकमल में ब्रह्मा बाधा बँधे थे। इधर उधर दृष्टि दौड़ाते ही चारों दिशाओं में उनके चार मुख हो गये। अब वे आठ नेत्रवाले देव अपनी अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से इस कमल को निहारने लगे उन्हें जिलासा दुर्दै इसका बीज कहाँ है ? यह उत्पन्न किससे हुआ है ? किन्तु इसको उत्पन्न करनेवाले आप बाह्य दृष्टि से तो दिखायी देते नहीं। ब्रह्माजी ने सब ओर दृष्टि दौड़ायी किन्तु कमल के अतिरिक्त उन्हें कुछ दिखायी ही न दिया। उन्होंने सोचा—“इस कमल से पृथक् इसका कोई कर्मावश्यक होगा। इसका बीज कहाँ जल में दूरे छिपा होगा, वहाँ पहुँचे इसके कारण को खोजूँ। वे जल के भीतर उबरे। ती बँसक खोजते रहे। वृक्ष से पृथक् कहीं बीज हो तो उसका पत्र मिले भी। कोई भी बीज जगत् उत्पन्न में परिणित हो जाता है

तब बीज तो उसी वृक्ष में जिलीन हो जाता है। आप उसकी जड़ को कैसे भी देखें कहीं बीज मिलेगा ही नहीं। ब्रह्माजी सौ वर्ष तक डुबकी मारकर खोजते ही रहे, कमल का बीज मिला ही नहीं। कहीं हो, तो मिले। जगत बीज ही तो ब्रह्मांड कमल हो गया था। अंकुर जब उत्पन्न होता है, तो उसमें बीज भी व्याप्त हो जाता है, कोई चाहे कि अंकुर उत्पन्न हो जाने पर भी हम बीज को देख लें, तो उसका प्रयास निष्फल है। इसीलिये ब्रह्माजी को सौ वर्ष तक ढूँढने पर भी उस ब्रह्मांड कमल के आदि कारण बीज के दर्शन नहीं हुए।

ढूँढ़ते ढूँढ़ते ब्रह्माजी थक गये, शरीर श्रमित हो गया बीज न मिलने पर उन्हें अत्यन्त विस्मय हुआ। अन्य कोई उपाय न देखकर पुनः आकर उसी कमल पर बैठ गये। समाधि लगायी और घोर तपस्या करने लगे। हे प्रभो ! चिरकाल तक तपस्या के कारण उनका अन्तःकरण अति निर्मल विद्युद्ग बन गया। अब उनके मन में यह बात आई कि बाहर खोजने से कार्य चलेगा नहीं, जो भी कुछ है अपने भीतर ही है। अधिक दौड़ धूप करने की आवश्यकता नहीं, बहुत भटकने से कार्य सिद्धि सम्भव नहीं। यही सोचकर वे और तीव्रतम तप में प्रवृत्त हुए। अब उन्हें अपने ही भीतर अन्तरात्मा में भगवान् के दर्शन हुए। जैसे पृथिवी तो स्पष्ट है, किन्तु उसमें से अति सूक्ष्म गन्ध को पृथिवी से प्रथक करके देखना चाही तो असम्भव है। इसी प्रकार ब्रह्मा जी का भूत, इन्द्रिय और अन्तःकरण मय तो शरीर है, वसमें अति सूक्ष्म रूप से भगवान् के दर्शन हुए।

हे स्वामिन् ! ब्रह्माजी उस रूप के दर्शनों से कृतार्थ हो गये, फिर भी वे विराट् रूप के दर्शनों के इच्छुक थे। आप तो भक्त बाष्पाकम्पित हैं न ? आपने वासा ब्रह्माजी की वह इच्छा भी

पूर्ण की वनको अपने मायामय विराट रूप के दर्शन कराये। उसमें भौति भौति आकृति वाले असंख्य आनन थे, अनगिनती चरण थे। इतने हाथ थे, कि किसी भी भौति उनकी गणना असम्भव थी इसी प्रकार उरु, नासिका, वदन, कर्ण तथा नयन थे। भौति भौति के चित्र विचित्र आभूषण पहिने हुए नाना प्रकार के आभूषणों को धारण किये हुए वे शरीर थे। उस विराट रूप में वीरुही सुवन प्राप्त थे। माया के कारण अपरिमित अगणित रूपों वाला वह विचित्र रूप था। उस रूप को देखकर ब्रह्माजी के रोम रोम खिल गये, उन्हें परमानन्द प्राप्त हुआ। जिसके लिये वे प्रयत्न प्रयत्न कर रहे थे उस रूप के उन्हें सहज में ही कमल पर बैठे ही बैठे दर्शन हो गये। ब्रह्माजी ने आपकी अनेक स्तोत्रों से स्तुति की। आपने उनसे वर मांगने को कहा। उन्होंने सृष्टि रचना ज्ञान का वर मांगा आपने उन्हें वेद प्रदान किये।

ब्रह्माजी वेद पढ़ ही रहे थे, कि त जाने कहाँ से दो दैत्य वहाँ आ घमके। प्रथम प्रास में ही मत्तिका पात हुआ। जैसे औरसागर के मन्थन से पहिले पहिले हात्ताहल विष उत्पन्न हुआ इसी प्रकार सृष्टि के आदि में भी सर्व प्रथम तमोगुण और रजोगुण के रूप में दो असुर ही उत्पन्न हुए। वे भी ब्रह्माजी के कान से ही निकल पड़े। मीतर जो रजोगुण तमोगुण भरा था वह कानों द्वारा बाहर आगया। सृष्टि तो बिना रज तम के होती नहीं। सत्वगुण तो शान्त है, वह तो ज्ञान को बढ़ाने वाला है, बुद्धि को बिगाड़ने वाले, ज्ञान को हरने वाले, सृष्टि को बढ़ाने वाले तो रजोगुण और तमोगुण ही हैं। दोनों दुष्ट निकल कर अपने वाप की ही घमकाने लगे। कैसा सृष्टि का विचित्र खेल है। बापको मारकर बेटा उसका आसन लेना चाहता है, वह अपने जनक का ही अन्त करके बढ़ने को उत्सुक होता है। उन

दोनों दुष्टों ने सत्व स्वरूप जो वेद था, पहिले उसी का अपहरण किया, ब्रह्मा बाबा को कठिन परिश्रम से से प्राप्त की हुई सम्पत्ति पर ही सर्वप्रथम अधिकार जमाया। ब्रह्माबाबा कहते ही रहे—
 'अरे, तुम यह क्या करते हो, वेद को मुझपे क्यों छीनते हो, ठहरो सही, चाव तो सुनते जाओ, किन्तु वे किसकी सुनने वाले थे। वेदों को लेकर चम्पत हो गये और जाकर सगुद्र के जल में छिप गये। अब कमलासन चतुरानन बाबा क्या करते। पुजारी को दौड़ मन्दिर तक। उनको तो एकमात्र आपका ही सहारा था, फिर अव्यग्रभाव में आपकी ही स्तुति करने लगे। आपने ब्रह्माजी को दुखी देखकर दर्शन देते हुए पूछा—“कमलयोनि ! क्यों वयसा गये, क्यों व्यग्र बने हुए हो।”

ब्रह्मा बाबा बोले—“अजी, महाराज ! सभी काम गड़बड़ा गया। रजोगुणी तमोगुणी दो दैत्य वेदों को हर ले गये।” आपने कहा—“कोई बात नहीं मेरा नाम दैत्यारि है, रजतम रूपी असुरों का मैं अन्त कर सकता हूँ, तुम देखो, मेरे ठाठ। हयग्रीव का रूप रखकर अभी पाताल में जाता हूँ, असुरों को मारकर अभी उनसे वेद लाता हूँ।” यह कहकर आप जल के भीतर गये। मधुकैटभ दैत्यों से लड़े। मधुकैटभ को छल से मारकर उनकी मेढा से स्थूल भेदिनी का निर्माण करके सृष्टि का श्रीगणेश कर दिया। वेदों को लाकर ब्रह्मा बाबा को पुनः समर्पित कर दिया। इससे सिद्ध हुआ आपको सत्व अत्यन्त प्रिय है, इसीलिये सत्वगुण को ही आपका परम प्रियतम रूप माना जाता है।

हे प्रभो ! आपने हयग्रीव ही अवतार लिया हो, सो बात नहीं। भिन्न भिन्न युगों में विविध कल्पों में आप अनेक अवतारों को धारण करते हैं, ऊँची नीची सभी योनियों में प्रकट होकर दुष्टों का संहार तथा शिष्टों का पालन करते हैं। कभी मनुष्य

बन जाते हैं, राम, कृष्णादि रूप रखकर ऋद्धा करते हैं। कभी त्रिशूळ चार पैर वाले पशु भी बन जाते हैं। पशुओं में भी सूकर बनने में भी संकोच नहीं करते। कभी जटाधारी, लटाधारी, तपस्याव्रतधारी, कपिल, नरनारायण। वपेन्द्रादि रूपों में शृंग बन जाते हैं, कभी उपेन्द्र बनकर देवताओं उत्पन्न हो जाते हैं कभी जलचर जीवों में कच्छ मच्छ बनकर जल में फिलोले करते फिरते। इस प्रकार नाना अवतार लेकर, विविध वेष बनाकर सम्पूर्ण लोकों का पालन करते हैं, तथा सृष्टि के कार्य में जो कटक होते हैं, उन जगद्विद्रोही असाधु असुरों का संहार करके सभी को सुख पहुँचाते हैं।

हे बहुरूपधारी सर्वसमर्थ सर्वेश्वर ! आप युग युग में प्रत्येक अवतार लेते हैं अपने अनुगत अनुचरों को दर्शन देकर कृपार्थ करते हैं। सत्ययुग, त्रेता, और द्वापर इन तीनों युगों में तो प्रत्येक अवतार लेकर सबके देखते देखते धर्म की रक्षा करते हैं। किन्तु कलियुग में तो शुश्रूषण से ही रहते हैं। आपको सर्व साधारण पहिचान नहीं सकते देख नहीं सकते। इस युग में आप छिपे ही छिपे प्रच्छन्न भाव से सृष्टि के रक्षण कार्य को करते रहते हैं। सृष्टि की रक्षा आपके ही द्वारा होती है। तीनों युगों में प्रत्येक होने के कारण आपके अनेक नामों से एक नाम 'त्रियुगी' भी है। त्रियुगीनारायण बनकर आप सृष्टि रक्षण कार्य में संलग्न रहते हैं। ऐसे सत्य स्वरूप त्रियुगनारायण के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

सूतजी कहते हैं—“मुनियो ! इस प्रकार प्रह्लादजी ने जगत और जगद्गोश्वर के सृष्टि कार्य को बताते हुए उनकी स्तुति की। अब आगे जैसे वे अपने दुष्ट मन की प्रबलता बताते हुए उसे

भगवान् के चरणों में लगाने की विनती करेंगे, वह कथा प्रसन्न
आगे कहा जायगा ।'

छप्पय

सब संसार समेट पेठ में छल तें सोओ ।
कालशक्ति पद पदुम पलोटे सब तुम जोओ ॥
कमलनालतैं भये प्रकट अज पार लगायो ।
भये निरत तप साहि पार जब बीज न पायो ॥
हिय में प्रकटे प्रेमवशा, पुनि विराट दरसन करत ।
धरम हेतु बग पालि प्रभु, नाना अवतारनि परत ॥

पद

करता करम करन तुम नरहरि ।
बृत्त बीज घनि जावै जैसे, बने जगत कुरुना करि ॥१॥
प्रलय पयोधि प्रसवे पौढ़ि, उपर साहि सय जग धरि ।
काल पाइ सब नाभिकमलतै, प्रकटे अज भूतनि भरि ॥२॥
खोजत यके मिले हिय भीतर, वनि विराट तुम मधु-अरि ।
जो जो शरन चरन की आयें, ते प्रभु अवसि गये तरि ॥३॥



प्रह्लादकृत नृसिंह स्तुति [६]

(५७)

नैतन्मनस्तव कथासु विहृण्वनाथ !

सम्प्रीयते दुरित दुष्टमसाधुतीव्रम् ।

कामातुरं हर्षशोकभयैषणात्तम्,

तस्मिन् कथं तव गतिं विमृशामि दीनः ॥ॐ

(श्रीभा० ७ स्क० ६ अ० ३६ श्लो०)

छप्पय

यह मेरो मन मलिन मोहमय कामातुर नित ।
कथा साहि नहि छने भगे भोगनि में उतइत ॥
तव चिंतन कम कल अथि इन्द्रिय दुख देखे ।
जैसे पति अनेक कष्ट दे दे पति सेवे ॥
मय वैतरनी महें पड़े, भगवन् ! भटकैं भूतगन ।
मोह मगन अनमें मरे, पार करो कहना अयन ॥
मन को स्वाभाविकी प्रवृत्ति विषयों की ओर आकृष्ट होने
की है और विषयों में इतनी मोड़कता है कि वे हठान् मन को
अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं । जब चार और कुतिया दोनों

ॐ स्तुत करतें हुए प्रजापति कह रहे हैं—“हे वैकुण्ठनाथ ! मेरे मन
की प्रीति आपकी कथाओं में नहीं होती । यह मन बड़ा ही दुष्ट है, भ्रष्ट
हो प्रयास दे, बहुत हो तीन दे । मान के लिये सदा आतुर बना रहता है
तथा हर्ष, शोक, भय, पुनःपणा, विषेपणा और लोभेपणा आदि कामनाओं
से व्याकुल बना रहता है । अब आप हो बतावे ऐसे अथम मन से मैं होन
होन आपकी गति का ऐसे विचार कर कर सक्ता हूँ ॥”

श्री मिल गये तब तो युद्धपति की वस्तुएँ अवश्य ही चोरी चली जायेंगी। जिसे प्रहरी बनाकर घरके द्वार पर नियुक्त किया था और जिससे आशा की थी, कि चोर के आते ही वह उसके विरोध स्वरूप चप़ता प्रकट करेगा, किन्तु चप़ता करनेकी बात तो 'युधक' नहीं स्वयं चोरों के सम्मुख पंछे हिलाने लगी, उनके डाले हुए टुकड़ों को खाकर उन्हीं की हॉ में हॉमिलाने लगी। तब तो बात बिगड़ेगी ही। इसी प्रकार जब मन विषयोंमें फँस जाता है, इन्द्रियों को विषयोंमें प्रवृत्त करता है और विषय इन्द्रियों में समा जाते हैं तो उस समय मन असमर्थ हो जाता है तब तो भगवान् ही एकमात्र रक्षा कर सकते हैं, स्तुति प्रार्थना का ही एकमात्र वल अवशेष रह जाता है।

सुतजी कहते हैं—'सुनियो ! भगवान् की भक्तवत्सलता का वर्णन करने के अनन्तर अब प्रह्लादजी अपने मनको सतपथ में लगाने के लिये प्रभुसे प्रार्थना करते हुए निवेदन कर रहे हैं। वे कहते हैं—'हे प्रभो ! मेरे इस मनका एकमात्र कार्य है आपकी कथा का सदा गचिंतन करता रहे। कानों से आपके सुमधुर नामों का गुणों का श्रवण करे। नेत्रों से आपकी छविका-आपके दासोंका-दर्शन करे, जिह्वासे आपके प्रसादका आपके चरणामृत का आस्वादन करे, नासिका से आपके चरणों में चढ़ाई तुलसी की सुँघे, त्वचासे आपकी प्रसादी मालाका आपके निर्मल्य का स्पर्श करे, हाथों से आपकी सेवा करे, चरणों से आपके पुण्य क्षेत्रोंमें जाय। यह मन और उसके अधीन इन्द्रियों का काम है, किन्तु यह मेरा मन ऐसा दुष्ट है, कि आपकी कथामें लगता ही नहीं। कथा कीर्तनका नाम सुनते ही पचड़ा जाता है, नाच गान आदि सरसता की बातें होंगी, माम्यगीत तथा विषय बातें होंगी तो उनमें तो ऐसा तन्मय हो जयगा, किन्तु जहाँ कथा की बात आइं इसे पल पल भारी पड़जायगा वहाँ से वृ

कर भागने ही लगेगा। इधर चर भटकता ही रहेगा। यह ऐसा दुष्ट हो गया है, कि इसे अपने भले बुरे का विवेक नहीं। ऐसा दोष दूषित हो गया है, कि दुर्गन्ध की ही ओर दौड़ता है। ऐसा कामातुर बन गया है कि सदा सर्वदा विषयोंका ही चिन्तन करता रहता है। ऐसा विक्षिप्त हो गया है, कि अतुकूल भोग मिलने पर हर्षित हो जाता है, पतिकूल वेदना प्राप्त होनेपर शोकातुर हो जाता है, विषय प्राप्तिमें आपात न पड़े इसके लिये सदा भयभीत बना रहता है। मुझे घन मिले, लो मिले, मेरे बाहरी शत्रुओंका नाश हो, घन वैभव विषय सुख मिले। परलोकमें भी यही विषय भोग दिव्य बनकर प्राप्त हो इन्हीं पयसाओं के लिये व्याकुल बना रहता है। भगवन् ! इस विषयासक्त मनने मुझे अत्यन्त कृपण दीन बना रखा है, अब आप ही बतावें ऐसे चारों ओर विषयवन में भटकने वाले मनसे मैं आपके विशुद्ध सत्वमय स्वरूप का चिन्तन भला कैसे कर सकता हूँ ?

इस मन ने इन्द्रियों को ऐसा पदा लिखा रखा है कि इन्द्रियाँ मेरी बात मानती नहीं। वे मुझे अपनी ओर बलपूर्वक खींचती हैं। रसना ने कहा—रसगुल्ला खाओ। अकृष्ण एक बार उसको बात मानती। अब वह क्यों क्यों खाती है क्यों ही क्यों अदृप्त बनती जाती है, उसकी कभी तृप्ति ही नहीं होती, नित्य नये स्वाद चखने को व्यग्र बनी रहती है और मुझे रसोले, सरस पदार्थों को खानेके लिये उकसाती रहती है। उपस्थेन्द्रिय नित्य नया स्पर्शानुभव करने को लालायित रहती है, आँखें रूपकी ओर ललचायी दृष्टिसे देखने को आकुल रहती हैं। त्वचा कहती है मुझे गूदल गुद गुदे, सुखद कोमल स्पर्श चाहिये। तब तक पेट कहता है, मेरा गड्ढा भरता ही नहीं। दिनमें आठबार लालो वो भी यह खालीका खाली ही बना रहता है, ऐसा दुष्पूर यह गड्ढा है। कर्ण कहते हैं कुछ तान ठप्पा सुनवाओ कोई सरस

गाला सुनवाओ कोकिल बैनो के कल कञ्चित फंठ से मेरे कहर को भरदो। देखने में कान के छिद्र छोटे होते हैं, किन्तु सुरसवा की बातें सुनते सुनते अघाते नहीं। प्राण कहती है तुम्हें तो दुर्गन्ध भावी ही नहीं सदा सुगन्धि ही चाहिये दृढ़के पुष्पोंकी कामिनी के केशपाश में पड़े सुगन्धित पदार्थों की अंगरागकी, सुखद सुरभि तथा गन्ध सदा चाहिये। कर्मन्त्रियाँ कहती हैं, विषय भागोंकी ही ओर भागो; वयर ही प्रयाण करो, उन्हें ही प्राप्त करो। अब आप ही बताइये मैं अकेला ये डाँड़ने इतनी, मैं सब की इच्छा कैसे पूरी कर सकता हूँ। कोई किसी ओर खींचता है कोई दूसरी ओर जैसे की बहुत सी स्त्रियों हो वे अपने निर्बल पतिको मिलकर पकड़ लें; कोई कान पकड़ कर कहे पूर्वकी ओर चलो, कोई हाथका मटका देकर कहे नहीं परिचय की कोठरी में चलना होगा, कोई चौटी पकड़ कर ऊपर की ओर घसीटे। जैसे उस निर्बल पतिकी उन सीतोंके फंदेमें फँसकर दुर्गति होती है वैसे ही मेरी भी इस विषयासक्त मन के बरामें रहने वाली इन्द्रियों के कारण हो रही है, हे सब समर्थ प्रभो! मेरी इस दुःख से रक्षा करो। हे उत्तमरत्नो! मेरा बटार करो। हे दयालिवे! दया करो, हे कृपा के सागर कृपा करो।

हे नित्य शुद्ध बुद्ध युक्त स्वरूप प्रभो! ये जीव भवसागर में पड़े गोते खारहे हैं, विषयवन में इधर उधर भटक रहे हैं, संसार रूप बेतरणों में फँसे हुए लेशा पारहे हैं। नानाशोचियों में कर्मानुसार पड़े हुए विपत्तियों की भीम रहे हैं, रागद्वेष के पंकमें फँसे एक दूसरे से ईर्ष्याकर रहे हैं, इन्द्रियों के विषयों में आसक्त हुए खानपानादि के कारण कालर बने हुए हैं। कुछ अपने पक्षके अपने स्वार्थ साधक मिल जाते हैं उनसे अनुराग करते हैं, मिथ्या दिखाते हैं, प्रतिकूल स्वभावके विपक्षियों से सदा द्वेष करते रहते हैं, उनके अनिष्ट की सदा

चिन्ता में निमग्न रहते हैं। राग, द्वेष, ईर्ष्या तथा विद्वेष के कारण सदा जलते ही रहते हैं। हे दया सिन्धो! आप इन दोनों पर दया दस्ताइये। हे कठणासिन्धो! इन कुत्सित कामियों के ऊपर कृपा कीजिये। दुःख पाते हुए वैतरणी के पंक में फंसे प्राणि वर्ग को पार पहुँचा दीजिये, इन अनाथ और अज्ञ जीवों की रक्षा कीजिये। इन भूले भटके लोगों को पुण्य पथ दिखाइये।

हे जगत गुरो! आप चाहें तो आप के लिये कोई असंभव नहीं। जो कारावास में डाल सकता है वही चाहे तो मुक्त भी कर सकता है, जो खिलौना बना सकता है, वह उसे बिगाड़ भी सकता है, वह उसे नष्ट भी कर सकता है, जो दण्ड दे सकता है वह क्षमा भी कर सकता है। आप ने ही तो इस जगत को बनाया है, आप ही विष्णु बनकर नाना अवतार रखकर इसका पालन करते हैं और आप ही अन्त में रुद्र रूप रखकर संहार भी कर डालते हैं। आप सब समर्थ हैं, फिर आप को इन सब को पार लगाने में क्या प्रयास होगा? आप कहेंगे आप को ऐसा कौन सा परिक्षम पड़ेगा? ये लोग इस योग्य नहीं, कृपा के पात्र नहीं अनुग्रह के अधिकारी नहीं, दया योग्य दिखायी नहीं देते। सो यदि भगवन्! आप पात्रों को ही तारते हों तो फिर आप को दयालुता कहाँ रही? दया के विशेष पात्र वो ये अज्ञ मूढ़ जन ही हैं, कृपा तो अकिम्बन अज्ञों पर ही करनी चाहिये। महापुरुषों की अतृकम्पा तो अधम पुरुषों पर ही होनी चाहिये। स्वामिन्! आप सोचते होंगे, मैं अपने लिये ही इतनी प्रार्थना कर रहा हूँ। सो, नाथ! मुझे अपनी तो छतनी चिन्ता नहीं। मेरे हित पर तो आप ने अपना वरद हस्त कमल रख ही दिया है, मैं तो आप का दासत्व स्वीकार कर ही लिया है और आप ने भी मुझे अपना करके अपना ही लिया है। अपनी प्राप्ति का पथ

दर्शों ही दिया है, हम दावों के लिये आप की तनिक सी कृपा ही वयेष्ट है, विशेष कृपा के पात्र तो ये मुद जन ही हैं। और मेरी बात तो भगवन्! यह है, कि मैं इस संसार की भयंकरता से तनिक भी नहीं डरता। यह वैतरणी की कीच अन्ध लोगों के लिये चाहे कितनी भी लेश कारिणी भले ही हो, दूसरे लोग इसे पार करना दुष्कर तथा कठिन भले ही मानते हों मुझे खिलवाड़ सी लगती है। मेरा चित्त तो आप के गुणगान रूप कथामृत में निमग्न रहता है। अमृत के समुद्र की भीति रह नहीं सकती। मैं तो आप की कमनीय कथा सुनते सुनते मुख से आप के सुमधुर मंगलमय नामों को लेते लेते अनायास ही बिना श्रम के ही सहज में तर जाऊँगा। मुझे चिन्ता इन संसारी लोगों की है, जो पैसा की ही सब कुछ समझते हैं प्रेयसी के पीछे ही व्याकुल बने रहते हैं, बिच्छा मूत्र कफ खलार के दुर्गन्ध युक्त चिन्तने देह की दूसरी ऐसी ही घृणित देह में सटाकर सुख का अनुभव करते हैं जो सदा सर्वदा विषयों में ही व्यम बने देशविदेशों में घूमते रहते हैं नीच से नीच कार्य करके भी स्त्री पुत्र आदि परिवार वालों का पालन पोषण करते हैं। फिर भी उन्हें सन्तोष नहीं होता, छल, कपट, दम्भ पाखंड तथा असत्य के द्वारा धनोपाजन करके भी निरन्तर लेशों का ही सामना करते रहते हैं, जो कथा कीर्तन से विमुक्त रहकर शिशोदर परायण बने रहते हैं ऐसे मृदों की ही मुझे अत्यधिक चिन्ता व्याप्त है, वन्हीं के दुःखों के कारण मैं दुःखी बना रहता हूँ। जो अन्न पुरुष शब्द, रूप, रस, गंध तथा स्पर्शोदि सांसारिक विषयों से व्याप्त रहते हैं तथा इन्द्रियों के इन भोगों को उपलब्ध करने में सतत प्रयत्नशील बने रहते हैं। इन अनित्य चण भंगुर नाशवान् मायिक सुखों के लिये परिवार के भरण पोषण के निमित्त पागल बने रहते हैं, वन्हीं का किसी प्रकार

चढ़ार हो वन्हींकी बुद्धि कथा कीर्तन में कैसे भी लगे इसी की मुझे सनसे अधिक चिन्ता है।

आप कहेंगे कि इसे तो छपि मुनि साधु सन्त करेंगे ही तुमको न्यर्थ में बैठे बिठाये शिरः पीड़ा मोल लेना है? भगवन्! बात तो सत्य ही है, काम तो परोपकारी साधु सन्तों का ही है, किन्तु श्रयः करके देखा गया है, साधु सन्त इन कार्यों से दूर ही रहते हैं। साधना भी करेंगे तो ऐसे घोर वनमें जहाँ कोई पहुँच न सके। बैठेंगे भी तो ऐसी छोटी सी गुफा में जहाँ किसी दूसरे को बैठने योग्य स्थान ही न हो। जप भी करेंगे तो मन ही मनमें कोई सुन न ले। चिन्तन भी करेंगे, तो आँख मीचकर। पैर भी भरने तो मॉगकर एकान्त में बापोंकी भी रोक रखेंगे, कि कोई भूला भटका वहाँ पहुँच भी जाय तो दो उपदेश भी सुनले। उन्हें अपने शरीर निवृद्धि के लिये कुछ कहना भी होगा तो संकेत से ऊँ ऊँ करके। लिखना भी होगा तो मुझे अज्ञ देजाना, वक्ष देजाना, दूध फल देजाना यही लिख देंगे। इस समस्त साधना का फल क्या? मैं अकेला युक्त हो जाऊँ, भवबन्धन से छुट जाऊँ, मेरा पुनः जन्म न हो। मुझे मातृ उदर में आना न पड़े। वस, जो भी कुछ हो मेरे लिये ही हो। वे ऐसे गंगावट आदि के परम पावन स्थानों में नहीं रहते जहाँ सर्व साधारण जिज्ञासु सुगमता से पहुँचकर उनकी साधना से कुछ प्रेरणा प्राप्त कर सकें। उनके पास कोई सुरक्षित स्थान या सधन वृक्षावली नहीं होती जहाँ संसारी तापसे संवत् प्राणी घड़ी दो घड़ी बैठकर शान्ति प्राप्त कर सकें। वे सबके साथ मिलकर भगवान् के परमपावन सुखमय, आनन्दमय, जगत् हितकारी भवभयहारी सकल संतापहारी मधुमय भगवन्नामों का तन्मयता से संकीर्तन नहीं करते, जिसमें स्वयं भी तरजाय और साथ ही साथमें कीर्तन करने वालों को भी तार ले जायँ।

वे स्वयं भले ही तर सकते हों, किन्तु वे तरन तारन नहीं। वे सबके साथ बैठकर घुल मिलकर रस ले लेकर आपकी कथा नहीं सुन सकते। किसी रसिक भक्तके मुखसे बहृत से भक्तोंके साथ आनन्ददाक्षु बहाते अतुराग भरित हृदय से जन्म मंगलकारी संसार सागरको समूल शोषण करनेवाली आपकी कथाओं द्वारा सबको सर्वसंग लाभ नहीं करा सकते। सबके साथ मिलकर भगवान् का भोग लगा हुआ दिव्य प्रसाद नहीं पा सकते। पूरी शक्तिसे मुक्त कंठ होकर आपके नामों गुणों का गान नहींकर सकते। वे आपके जगत्पावन चरित्रों का लिखकर सर्व साधारण के लिये प्रकाशित नहीं करा सकते जिससे जो जहाँ बैठा हो वहीं उन उत्तम परम पावन चरित्रों को प्रेम पूर्वक पढ़ सके और कथा रसमें निसम हो सके। सम्राज्ञ यह है, कि वे ऐकान्तिक साधना वाले मुनि गण परार्थ लिखते अलुप्तित नहीं होते, परोपकार रत नहीं होते अन्य मूढ़ जनोंके हितमें सत्पर नहीं रहते, किन्तु प्रभो! मैं ऐसा ऐकान्तिक साधक नहीं बनना चाहता। इन सब भूले भटके अज्ञ पुरुषों को छोड़कर अकेला मुक्त बनना नहीं चाहता। इन सब दौन हौन कृपणों का परित्याग करके मुझे अकेले मुक्त होने को लालसा नहीं। इस पर आप कह सकते हैं, कि तुम इस सबको मुक्त करना चाहते हो, तो कोई साधन खोजो, किसी अन्य समर्थ पुरुष का द्वार खटखटाओ। सो, प्रभो! आपके समान कोई अन्य समर्थ दृष्टिगोचर होता भी नहीं। आपके अतिरिक्त इस भवसागर में भटकनेवाले अमित व्यक्तियों को कोई पार पहुँचा भी नहीं सकता। आपसे प्रथक इनका कोई अन्य उद्धारक दृष्टिगोचर भी नहीं होता। अतः जैसे बने जैसे सभीका उद्धार करें, सभी को पार लगा दें, सभीको पुण्यपथ दर्शा दें, सभीको कुशल और निर्भय बना दें। सभीको भक्ति रसका

आस्वादन करा दें। सभीको अपने पाद पथोंकी अहेतुकी भक्ति प्रदान कर दें।

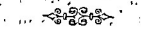
सूतजी कहते हैं—“मुनियो! इस परोपकार रत साधना की मुख्यता बताते हुए प्रह्लादजी ने सबके हितकी कामना नृसिंह भगवान् से की। अब आगे जैसे साधनामें इन्द्रियजित होने अत्यावश्यक है इस प्रसंग को बताते हुए स्तुति करेंगे उस प्रसंग को मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

सब समर्थ सरपेश दुखिनिहूँ सुखी बनावें।
हम तो तुमरे दास क्या सुनि मुनि तरिजावें ॥
मुनि जन अति ऐकान्त बैठिबन ध्यान लगावें।
स्वयं मुफिके हेतु दीन दुखियनि बिसरावें ॥
तनि इन दुखियनि दुखित नहिं, चहुँ अकेले मुक्तिपद।
प्रभु जो चाहें करि सकें, सबविधि केवल तुम सुखद ॥

पद

स्वामिन्! सबहुँ सुखी बनाओ।
दुखी जीव भव भटक रहे हैं, प्रभुजी पार लगाओ ॥१॥
मन नहिं सुने कथा विष चाखे, करननि विषय बचाओ।
राग द्वेष वश (विवश नरनिहूँ, निज गुन अमृत चखाओ ॥२॥
हैं अधिकांश अधिके अहं जन, पद छायामें लाओ।
जो विषयनि में अति सुख मानव, नहिं तिनहुँ विसराओ ॥३॥
सुविजन वनमें मनहुँ रोके, जगज्जीवो मरि जाओ।
मुक्ति न चाहैं नाथ अकेलो, सबनि संग पहुँचाओ ॥४॥



प्रह्लाद-कृत नृसिंह स्तुति(७)

(५८)

यन्मैथुनाद्दि यदमत्रिसुखं हि तुच्छम् ,
कष्टद्वयेन करयोरिव दुःखदुःखम् ।
तुष्यन्ति नेह कृपणा बहु दुःख भाजः ,
कष्टवृत्तिवन्मत्तिर्न विपहेत पीरः ॥६॥

(श्री भा० ७ स्क० ६ अ० ४५ श्लो०)

छाप्य

का सुख मैथुन नाहिं खजली ऐसे ।
सुख-सो पहिले लगे दुःख ही दुख प्रति जेते ॥
मोग, धरम, अध्ययन, वेद, वन, श्रवण, समाधी ।
जप, तप, व्याख्या शास्त्र मोक्ष दे संयम साथी ॥
इन्द्रिय लोभुष जीविका, साधन इन ही कुं करे ।
पाखण्डी करि दम्भ तै, करे जीविका कहूँ गिरे ।

जीव जिन विषय भोगों को सुख समझे वैठा है, वे परिणाम में दुःखद हैं, इसे नित्य अनुभव करता हुआ भी जीव इन्हें छोड़ नहीं सकता । इनसे उपराम नहीं हो सकता, इनकी ओर से

* स्तुति करते हुए प्रह्लाद जी कह रहे हैं—प्रभो ! जेते कष्ट आदि खजली पहिले खजलाने में तो कुछ सुख होता है किन्तु अन्तमें, उनसे

पराङ्मुख नहीं बन सकता। मायेश को माया है, यही लीलायागे की लीला है, जब वे ही कृपा करें तभी छुटकारा संभव है, वे ही जब अपनी ओर हठ पूर्वक खींचें तभी विषयों से हट कर उन हरि की ओर बढ़ सकता है वे कब कृपा करेंगे इसे भी उनके अतिरिक्त अन्य कोई जान भी तो नहीं सकता।

सूत जी कहते हैं—“मुनियो ! भगवान् नृसिंह की स्तुति करते हुये प्रह्लाद जी कह रहे हैं—“भगो ! यह प्राणी अधिक की आशा से तनिक सुखाभास के पीछे कितना कष्ट सह रहा है। सूखे पेड़ के नीचे कोई बहेलिया खड़ा है। बैशाख जेष्ठ की दोपहरी है नीचे से बारू जल रही है ऊपर से सूर्य देव तप रहे हैं। उस सूखे पेड़ पर मधु मक्खियों का एक छत्ता है, उसमें उसने मधु के लोभ से नीचे से ही लकड़ी चुभो दी। छत्ते से मक्खियाँ उड़ कर उसके शरीर को काटने लगीं, किन्तु साथ ही एक पक्षी वृंद करके मधु भी टपकने लगा। वन मधु विन्दुओं के स्वाद के पीछे वह ऊपर नीचे की उष्णता भी सहता है, मक्खियों के काटने को भी सहता है। सम्पूर्ण शरीर से रवेद चू रहा है, अंग प्रत्यंग संतप्त हो रहा है, किन्तु तनिक से जिह्वा सुख के पीछे वह सभी क्रोशों को सहता है, वह जिह्वा का सुख भी स्थायी नहीं क्षणिक है। मधु के विन्दु जहाँ जिह्वा से नीचे गये दुर्गन्ध युक्त

अधिकाधिक दुःख ही बढ़ता है, उसी प्रकार गृहस्थियों के जो नैयुनादि कुल हैं चणभर को तो उनसे सुख मिलता है, किन्तु परिणाम दुःख ही होता है, इसी प्रकार ये सभी भोग अत्यन्त ही तुच्छ हैं। किन्तु ये संसारी छपण जन विविध भौतिक दुःख उठाते रहने पर भी वृत्ति का अनुभव नहीं करते। हाँ कोई पौर पुरष इन नेत्रोंको सहन करके मुक्त होता है।

कुछ असुविधा प्रतीत होती है किन्तु अन्त में सुख ही सुख है। फिर न छर छराहट उठती है, असुख पीड़ा ही होती है। किन्तु उस खुजलाहट के वेग को सहन करना वहाँ हाथ को न जाने देना यह भी तो अत्यंत साहस का काम है। उस साहस को ही मेरे श्यामसुन्दर ! तुम ही दे सकते हो। नहीं तो ये विषय गर्त में फंसे दीन जन तो इस खुजलाहट से सदा अतृप्त ही बने रहते हैं। इसे रोकने के जो शास्त्रीय उपाय भी करते हैं वे भी इन्द्रियों पर अधिकार न होने से विपरीत ही फल देनेवाले होते हैं। फल तो भावना अनुसार होता है, एक सा ही काम करने वाले, एक समान ही चेष्टा करने वाले दो व्यक्तियों के भाव भेद के कारण फल में भी विपरीतता देखी जाती है। वस्तु एक होने पर पात्र भेद से परिणाम भेद देखा गया है। वर्षा का जल एकही है, वह यदि गंगादि नदियों में पुष्करादि सरोवरों में गिरता है तो पीने योग्य मीठा हो जाता है वहीं समुद्र में पड़ता है, तो अपेय खारी बन जाता है यही बात साधनों के सम्बन्ध में है। साधन एकही है उसे इन्द्रियजित संयमी करता है, तो उससे मुक्ति मिलती है असंयमी अजितेन्द्रिय करता है, तो उसकी जीविका का साधन बन जाता है, और दूमी करता है तो कहीं तो उसका दूध पाखण्ड चल जाता है तो कुछ संसार का काम चल जाता है, कहीं दम्भ खुल गया तो कुटाई भी होती है। इससे साधन में इस मन पर निग्रह करना सबसे अधिक आवश्यक माना गया है। जब तक इन्द्रियों वश में नहीं तब तक केवल साधनों से काम नहीं चलता।

अथ जैसे मीन त्रत ही है यदि इस त्रत को इन्द्रिय जित संयमी शुद्ध भाव से करे तो उस का मन संसारी विषयों से दूट कर भगवान् में लगेगा और वह मुक्ति का अधिकारी होगा। किन्तु उसे अजितेन्द्रिय विषय लोलुप करे, तो लोग कहेंगे, चलो, जैसा

भी कुछ है कुछ न कुछ कर ही रहा है इसे भोजन तो देही दो। उस मौन से उसकी आजीविका चल जायगी। अब एक तीसरा दम्भी है, उसने देखा मौनी रहने से तो लोग बड़े प्रभावित होते हैं, अच्छे अच्छे माल खाने का मिलते हैं, लाखों हम भी अपने को मानी घोषित करते। दो चार सिद्ध साधक मिलकर चल दिये, एक को भूटे ही मौनी घोषित कर दिया। ५० वर्ष से ये मौन रहते हैं, बड़े सिद्ध महात्मा हैं किसी की ओर देखते तक नहीं। इनका मन से ही आशीर्वाद फलता है इन्हें धर्मशाला बनवानी है। कुछ द्रव्य चाहिये। कुछ लोग प्रभाव में आकर धन दे देते हैं। लेकर चले जाते हैं वहाँ दम्भी मौन से इनका काम चल गया। कहीं दूसरे स्थान पर गये। किसी चतुर ने साइ लिया। छिपकर सुनता रहा। जो दिन में ५० वर्ष का मौनी सुनता था वह तो रात्रि में अपने साथियों से चुपके चुपके बातें कर रहा है। दस बीस युवक आये मौनी बाबाको तथा उनके साथियों के आगे डंडाओंसे पूजा करके निकाल दिया। यहाँ दम्भी से कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ उल्टे मार पड़ी। इसी प्रकार मोक्ष के अन्य साधनों के सम्बन्ध में भी है।

अब जैसे कुछ बान्द्रायणादि व्रत ही हैं इन्हें यदि जितेन्द्रिय करेंगे तो उनका अन्तःकरण शुद्ध होगा इससे वे मोक्ष के अधिकारी बनेंगे। अजितेन्द्रिय पुरुष प्रसिद्धि के लिये करेंगे, तो ऊपर से तो व्रत करते रहेंगे भीतर ही भीतर सोचते रहेंगे, कब व्रत के दिन पूरे हों और कब हम सुदूर से सुदूर स्वादिष्ट पदार्थ खायें। वे सब पर अपने व्यवहार से अपने व्रतकी धाकभी जमाते रहते हैं ऐसे अजितेन्द्रिय पुरुषों को इसी लोक में पैसा प्रतिष्ठा का लाभ भले ही हो जाय मोक्ष का साधन वह व्रत नहीं, धन सक्ता दम्भियों का यदि दावलग गया, तो सिध्दा व्रत के नाम पर कुछ

जोड़ लेंगे पोल खुल गयी तो केवल कायक्लेश और अपमान ही हाथ लगेगा।

इसी प्रकार वेद का अध्ययन जितेन्द्रिय करेंगे तो उससे उन्हें ज्ञान होगा, ज्ञान से मुक्ति होगी। अजितेन्द्रिय करेंगे तो वेद विक्रय करके यज्ञयागादि कराकर दक्षिणा प्राप्त करेंगे दम्भी वेद के नाम पर करें यदि भाग्यवश निशाना लग गया तो तीर का कामदे जायगा, नहीं तो तुक्का बना बनाया ही है। यही बात शास्त्रों के श्रवण के सम्बन्ध में भी है। जितेन्द्रिय शास्त्रश्रवण करके मन के निदिध्यासन द्वारा ब्रह्मसाक्षात्कार करेंगे। अजितेन्द्रिय श्रवण के नाम पर व्यापार चलावेंगे। दम्भियों को सिद्धि संशय प्रसन्न है कभी कुछ मिल भी सकता है कभी कोरे भी रह सकते हैं। तपस्या की भी यही दशा है जितेन्द्रिय करेंगे, तो तपसा चीयते ब्रह्म^१ तपस्या से ब्रह्म साक्षात्कार होगा, अजितेन्द्रिय तपके द्वारा संसारी या स्वर्ग के सुख भोग सकते हैं, दम्भियों के दाल गल गयी तो तप के नाम से लोगों को ठग लेंगे कलई खुल गयी, तो मार के दक्षिणा प्राप्त करेंगे। स्वधर्म पालन जितेन्द्रिय पुरुषों के लिये मुक्ति मार्ग में सहायक है, अजितेन्द्रिय करें तो उन्हें इसी लोक में वसका फल मिल जायगा और किन्तु दम्भियों को परलोक में तो कुछ मिलेगा ही नहीं। इस लोक में बनाभर के धौ मिल सकता है कभी मुठ्ठी भर चना कभी वह भी मत्ता।

शास्त्रों की विराद व्याख्या करके लोगों पर बाणों द्वारा लेखनी द्वारा निष्काम भाव से प्रकट करने पर मोक्ष निश्चित है यदि करने वाले काम लोलुप न हों तो अजितेन्द्रिय व्याख्या द्वारा पैसा पैदा कर लेंगे और दम्भी सदा संदिग्ध बने रहेंगे। एकान्त वास जितेन्द्रिय पुरुषों को मुक्तिपद प्राप्त कराता है, अजितेन्द्रिय प्रविष्टा पा सकते हैं। दम्भी लोग दूसरों को लट भी सकते हैं और काश

वास भी जा सकते हैं। जप संयम द्वारा सुक्ति दिला सकता है। असंयमीका व्यापार बढ़ा सकता है, दुस्मी का जप कहीं कार्य कर जायगा कहीं व्यर्थ सिद्ध होगा। यही बात समाधिक सम्बन्ध में है यम नियम पूर्वक लगायी गयी समाधिसे ब्रह्म साक्षात्कार होता है असंयमी समाधिका अभ्यास करले तो नट विद्या दिखा कर पारितोषिक पा सकता है और लोगों समाधिका दम्भरचे तो कभी सोधे सादे लोग फँस भी सकते हैं और कभी इतुमानजी जैसा कोई मिल गया तो कालनेमिकी भौति पूजा भी कर सकता है।

इस प्रकार हे प्रभो! इन सभी उदाहरणों से यही सिद्ध हुआ कि इन्द्रियोंको बशमें करना सभी साधनों के लिये अत्यावश्यक है। वेद ने आपको सत् असत् कार्य कारण तथा बीज और अङ्कुर के समान बताया है। जैसे आप सत्य स्वरूप से यह असत् संसार हो गया है, जैसे बीज से वृक्ष बन जाता है, यही दृष्टान्त पूर्ण नहीं आपतो अरूप है, आपका तो कोई रूप हो ही नहीं सकता किन्तु यदि ऐसे न बतायें, तब तो आपके सम्बन्धमें कुछभी कहा ही नहीं जा सकता। इन दृष्टान्तों को छोड़कर आपके ज्ञानका अन्य साधन दृष्टिगोचर ही नहीं होता। योगीजन भक्तियोग के द्वारा सद् असत् स्थूल सूक्ष्म तथा कार्य कारण इन दोनोंमें ही आपको अन्वेषण करलेते हैं, आपका साक्षात्कार करते हैं जैसे काष्ठ में छिपी अग्नि को संयन द्वारा प्रकट करलेते हैं। काष्ठमें अग्नि को कहीं से लाते नहीं हैं। दोनों अरणियों में प्रथम से ही अग्नि व्याप्त थी, केवल मन्थन क्रिया से वह प्रत्यक्ष की गयी। इसी प्रकार आपभी सर्वत्र व्यापक हैं आपके बिना इस स्थूल जगत् की उत्पत्ति ही नहीं हो सकती। आपसे पृथक् कार्य कारण इन दोनों की सत्ता ही नहीं। केवल भक्तिरूपः

ही न पहुँचे किन्तु पथ तो प्रशस्त कर ही सकता है, उपासना द्वारा भगवत् भक्ति द्वारा उनके द्वार तक तो पहुँचा ही जा सकता है। वहाँ पहुँचने पर तो फिर जीव को अपने आप कुछ भी करना न पड़ेगा, आगे तो स्वयं साक्षात् प्रभु ही आकर अपने धाम में अन्तर्गुरु में लेजायेंगे।

स्तुती कहते हैं—“मुनिगो ! भगवान् की स्तुति का उपसंहार करते हुए प्रह्लादजी कह रहे हैं—“हे प्रभो ! हे भूमन् ! आप अरूप का कोई एक रूप स्थिर तो किया नहीं जा सकता। जब आप ही इस संसार महीरुह के आदि बीज हैं, आपने ही जब वृक्ष का रूप रख लिया है, तो संसार में जो भी कुछ दिखायी देता है, सब आपका ही रूप है। यह जो वृक्ष पर्वतों वाली समस्त पृथिवी है आपका ही रूप है। समुद्र, नद, नदी, तालाव, कूप, तथा सभी प्राणियों के शरीर में जो जल है, सब आपका ही स्वरूप है। सूर्य में चन्द्रमा तथा अग्नि और जल में जो तेज है वह आपका रूप है। सर्वव्यापक वायु तथा अवकाश में व्याप्त आकाश आपका ही स्वरूप है। प्रभो ! श्रवण से सुना जाने वाला शब्द आपका ही रूप है। नेत्रों से देखे जाने वाले रूप आपके ही स्वरूप हैं। रसना से अनुभव किये जाने वाले रस आप ही हैं। घ्राण से सूँघे जाने वाले गन्ध आप ही हैं। त्वचा से अनुभव किये जाने वाले स्पर्श तन्मात्रा आप ही हैं। घ्राण अपानादि दस भेदों से शरीर में व्याप्त होने वाले घ्राण आप ही हैं। कर्मेन्द्रिय तथा ज्ञानेन्द्रिय भी आपका ही रूप है। मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार चतुर्विध अन्तःकरण आप ही हैं। अधिक कहाँ तक गिनावें जो समुष्टि है, निर्गुण है, जो मन से इन्द्रियों से जाना सुना तथा अनुभव किया जाता है, सब आप ही आप हैं, आपके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। ऐसे सर्वस्वरूप सर्वेश्वर को बारम्बार प्रणाम है।

प्रभो ! इतना सब होने पर भी आपके यथार्थ स्वरूप को कोई जान नहीं सकता। सत्वगुण को ज्ञान तथा प्रकारा युक्त कहा है, कि सत्वगुण स्वयं आप तक नहीं पहुँच सकता, कारण कि आप शुष्कातीत हैं। त्रिगुण जिससे उत्पन्न हुए हैं, वह मह-त्त्व भी आपका यथार्थ स्वरूप प्रकट करने में असमर्थ है। इन्द्रियों के अविष्टावृत्तेव तथा सबसे बुद्धिमान् कर्म करने में निष्णात मनुष्यों का मन तथा उनकी बुद्धि भी आपको नहीं जान सकती। आप वाणी, मन तथा बुद्धि के विषय नहीं। क्योंकि ये सब तो आपके पश्चात् उत्पन्न हुए हैं। जो उत्पन्न हुआ है उसका नाश भी अवश्य होगा। जो स्वयं आद्यन्तवन्त हैं, जो स्वयं आदि अन्त युक्त हैं। वह आप अनादि अनन्त को यथार्थ रूप से जान ही कैसे सकता है। इसीलिये तो विद्वान् शास्त्रों को पढ़ते हैं, सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थ में आपका रूप स्थिर करते हैं, वेद उसके लिये कह देता है नेति नेति 'नेर्द्वयदिदमुपासते' यह वह नहीं है नहीं है, जिसकी तुल्य उपासना करते हो, वह भद्र नहीं है। इससे वे अन्त में जाकर शास्त्राभ्ययन से चपरत हो जाते हैं, शब्द शास्त्र से विराम को प्राप्त हो जाते हैं। जब आप ऐसे अवाक मनस-गोचर हैं, तो फिर कैसे तुम्हें पावें ? परमहंस मुनिजने किस प्रकार तुम्हारा 'साक्षात्कार' करते हैं ? वे एकमात्र भक्तिभाव से तुम्हें उपलब्ध करते हैं। प्रभो ! आपकी भक्ति विविध भाँति की है, किन्तु पदंग भक्ति के बिना तो आप किसी प्रकार प्राप्त होते ही नहीं।

हे अर्किचन गोचर ! जो सर्वत्र त्याग कर संसार के विषय निस्सार हैं इनमें केवल मात्र आप ही सार हैं ऐसा मोर कीर विवेक करने वाले परम हंस मुनियों द्वारा ही आप प्राप्य हैं। आप अन्य उपायों द्वारा प्राप्त होते ही नहीं। उपायों द्वारा आपको प्राप्त करने की इच्छा ही हास्यास्पद है। आप तो कृपा

साध्य हैं और कृपा होती है भक्त पर। वह भक्ति ६ प्रकार की है। भक्ति का पहला अंग तो यह है कि हृदय से वाणी से और शरीर से आपको नमस्कार करता रहे। हृदय से सदा नमो तमः नमो गमः नागायणाय नमः कहता रहे। वाणी से भी नमस्कार करे और आपके अंर्चों विग्रह की तथा आपके भक्त साधु संत तथा अन्य पूजनीय देव द्विज और प्राणियों को साष्टाङ्ग प्रणाम करे। प्रणति से आपकी भक्ति की उपलब्धि होती है।

दूसरा भक्ति का अङ्ग है स्तुति प्रार्थना। सुन्दर सुन्दर हृदय माही स्तोत्रों से आत होकर आपकी प्रार्थना करे। स्तुति तो सभी को प्यारी लगती है फिर भक्तों द्वारा स्तुति सुनकर तो आप उनके हाथों बिक ही जाते हैं। देव की शीघ्र से शीघ्र प्रसन्न करने के निमित्त अजलि मुद्रा ही बताई है।

तीसरा भक्ति का अंग है सर्व कर्मोपश्रय। जो भी कुछ करे जो भी भोजन आदि करे, यज्ञ याग हवन करे दान दक्षिणा दे जो भी कुछ चान्द्रायणादि व्रत उपवास करे तीर्थ स्नान व्रत पारायण तथा और भी जो कार्य करें सभी को आप सर्वान्तर्यामी के अर्पण करने दें। अपने लिये कुछ शेष रखे ही नहीं। जब फल की इच्छा ही न रहेगी तब करने वाला निर्गुण हो जायगा और आप निर्गुण को प्राप्त कर लेगा।

भक्ति का चौथा अंग है उपासना। बिषय उपायों से मनको आपके समीप लगाये रहना। ध्यान धारण द्वारा आपका ही चिन्तन करते रहना। वह उपासना अग्नि की हो, आपकी प्रतिमा की हो या पंच भूत अतिथि आश्रय, शुभ गौ किसी में भी की गयी हो उसमें निमित्त आपका ही हो।

पाँचवाँ भक्ति का अंग है वरणों की स्मृति बनी रहे। उठते बैठते सोते सोते सभी काम करते आपके आरुण्य चरण कमलों

की स्मरण होता रहे। आपके चरणों के जो नख हैं उनसे एक प्रकार की व्योति निकलती रहसो है वही उपासकोंके हृदयान्धकार को दूर करती है। अतः चरण स्मृति आत्यावश्यक अंग है।

और भक्ति का छुटा मुख्य अंग है कथाश्रवण जब तक नित्य नियम से साधक कथा श्रवण करेगा तबतब उसे आपकी भागवती कथाओं के श्रवण करने का व्यसन न लगेगा। कथा न सुनने पर जब तक उसके मन में व्यग्रता न होगी तब तक आपकी भक्ति कोसों दूर है। अतः नित्य नियम से कथा श्रवण करना यह भक्तों का परम मुख्य कार्य है।

इस प्रकार हे हरे ! जब तक साधक इन ६ अङ्गों वाली भक्ति का आचरण न करेगा तब तक भक्ति हो ही कैसे सकती है और भक्ति के बिना आप प्राप्त कैसे हो सकते हैं।

सूतजी कहते हैं—“मुनियो ! इतनी स्तुति करके प्रह्लाद जी चुप हो गये। नृसिंह भगवान् ने भी क्रोध छोड़ उन्होंने शान्त होकर जैसे वर माँगने का कहा और प्रह्लाद जी ने जो जो उत्तर दिये इन सबका वणन तो मैं विस्तार से भागवती कथा प्रसंग में कर ही चुका हूँ। यह मैंने प्रह्लाद स्तुति आपसे कही अब जिस प्रकार प्राह्म के पकड़ लेने पर गजेन्द्र ने हरि भगवान् की स्तुति की उस दिव्य स्तुति का वर्णन मैं आपसे कहूँगा। आप साधधान होकर श्रवण करें।

छप्पय

प्रभुवर ! बिना प्रनाम और तब इस्तुति गाये ।

सख समरपन करम ध्यान तब चरन लगाये ॥

करम उपासन कथाश्रवन नित निमग्नित कीये ।

छै अंगनि की भक्ति बिना प्रविसे व्यो होये ॥

१४४

भागवत दर्शन, खण्ड ६५

जो इस्तुति प्रह्लाद जो, करि के पुनि चुप छै गये ।
है प्रवचन नरसिंह ने, भक्ति ललम वर बहु दिये ॥

पद

भक्ति ते' भक्त हिये में आओ ।
नमो नमो नारायण बिनु तुम प्रनतनिष्ठ अपनाओ ॥१॥
इस्तुति करे करम सब अरपे पूजा पाठ कराओ ।
करे ध्यान चरननि को नित प्रति विनिष्ठ दरस दिखाओ ॥२॥
कथा श्रवण करि गुन सब चिन्ते' तिन चित में जुमि जाओ ।
प्रभु पद पुनि पुनि परे प्रनत पति प्रेम पियूष पिआओ ॥३॥



प्रह्लादकृत नृसिंह स्तुति [८]

प्रह्लाद उवाच

ब्रह्मादयः सुरगणा मुनयोऽथसिद्धाः,

सत्त्वैकतानमतयो वचसां प्रवाहैः ।

नाराधितुं पुः सुखैरधुनापि यिषुः,

किं तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजातेः ॥१॥

मन्ये धनाभिजनरूपतपःश्रुतौजः,

तेजःप्रभाववत्पौरुषबुद्धियोगाः ।

नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो,

भक्त्या तुतोष भगवान् गजसूथपाय ॥२॥

विभाह् द्विपद्गुणयुतादरविन्दनाभ,

पादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ।

मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ,

माणंपुनाति स कुलं न तु श्रैरिमानः ॥३॥

नैवात्मनः प्रभुरयं निजलाभपूर्णां,

मानं जनादविदुषः करुणो वृणीते ।

यद् यज्जनो भगवते विदधीत मानं,

तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः ॥४॥

तस्मादहं विगतविद्वज् ईश्वरस्य,

सर्वात्मना महिं गृणामि यथामनीषम् ।
 नीचोऽजया गुणविसर्गमनुपविष्टः,
 पूयेत येन हि पुमाननुवर्णितेन ॥५॥
 सर्वे ह्यमी विधिकरास्तव सत्त्वधाम्नी,
 ब्रह्मादयो वयमिवेश न चोद्विजन्तः ।
 क्षेमाय भूतय उतात्मसुखाय चास्य,
 विक्रीडितं भगवतो रुचिरावतारैः ॥६॥
 तद् यच्छ मन्थुमसुरश्च इतस्त्वयाथ,
 मोदेत साधुरपि वृश्चिकसर्पहत्या ।
 लोकाश्च निवृत्तिमिताः प्रतियन्ति सर्वे,
 रूपं नृसिंह विभयाय जनाः स्मरन्ति ॥७॥
 नाहं विभेम्यजित तेऽतिभयानकास्य,
 जिहार्कनेत्रभ्रु कुटीरभसोऽग्रदंष्ट्रात् ।
 आन्त्रस्रजः क्षतजकेसरशङ्कुकर्णान्,
 निर्ह्रादभीतदिग्भिभादरिभिन्नखाग्रात् ॥८॥
 अस्तोऽस्म्यहं कृपणवत्सल दुःसहोऽग्नौ,
 संसारचक्रकदनाद् ग्रसतां प्रणीतः ।
 वद्धः स्वकर्मभिरुशत्तम तेऽङ्घ्रिमूलं,
 प्रीतोऽपवर्गशरणं ह्यसे कदा नु ॥९॥
 यस्मात् प्रियाप्रियवियोगसयोगजन्म,
 शोकाग्निना सकलयोनिषु दहमानः ।

दुःखोपयं तदपि दुःखमतद्विधाहं,
 भूमन् भ्रमामि च मे तव दास्ययोगम् ॥१०॥
 सोऽहं प्रियस्य सुहृदः परदेवताया,
 लीलाकथास्तव नृसिंह विरिञ्चगीताः ।
 अञ्जस्तिर्त्तुष्टुणन् गुणविभक्तो,
 दुर्गाणि ते पदयुगालयहंससङ्गः ॥११॥
 बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह,
 नार्तस्य चागदयुदन्वति मज्जतो नौः ।
 तप्तस्य तत्पतिभिर्धिर्य इहाञ्जसेष्टः,
 तावद् विभो तनुश्रुतां त्वदुपेक्षितानाम् ॥१२॥
 यस्मिन् यतो यहिं येन च यस्य यस्माद्,
 यस्मै यथा यदुत यस्त्वपरः परो वा ।
 भावः करोति विकरोति पृथक्स्वभावः,
 संचोदितस्तदखिलं भवतः स्वरूपम् ॥१३॥
 माया मनः सृजति कर्ममयं बलीयः,
 कालेन चोदितगुणानुपतेन पुंसः ।
 छन्दोमयं यदजयार्पितपोडशारं,
 संसारचक्रमज कोऽतितरेत् त्वदन्यः ॥१४॥
 स त्वं हि नित्यविजितात्मगुणः स्वधाम्ना,
 कालोवशीकृतविस्मयविसर्गशक्तिः ।
 चक्रे विस्मयमजयेऽथर पोडशारे,

निष्पीड्यमानमुपकर्षं विभो प्रपन्नम् ॥१५॥
 दृष्ट्वा मया दिविविभोऽखिलधिष्ययपानाम्,
 आयुः श्रियो विभव इच्छति याज्ञनोऽयम् ।
 येऽस्मत्पितुः कुपितहासजृम्भितविभू,
 विस्फूर्जितेन लुलिताः स तु ते निरस्तः ॥१६॥
 तस्मादमृस्तनुभ्रतामहमाशिषो वृ,
 आयुः श्रियं विभवमैन्द्रियमाविरिञ्चात् ।
 नेच्छामि ते विलुलितासुखविक्रमेण,
 कालात्मनोपनय मां निजभृत्पशार्धम् ॥१७॥
 कुत्राशिषः श्रुतिमुखा मृगतृष्णिरूपाः,
 ब्रवेदं कलेवरमशेषरुजां विरोहः ।
 निर्विद्यते न तु जनो यदपीति विद्वान्,
 कामानलं मधुलवैः शमयन् दुरापैः ॥१८॥
 ब्रवाहं रजःप्रभव ईश तमोऽधिकेऽस्मिन्,
 जातः सुरेतरकुले क्व तवालोकस्या ।
 न ब्रह्मणो न तु भवस्य न वै रमाया,
 यन्मेऽर्पितः शिरसि पञ्चकरः प्रसादः ॥१९॥
 नैषा परावरमतिर्भवतो ननु स्यात्,
 जन्तोयथाऽऽज्जममुद्ददो जगतस्तथापि ।
 संसेवया मुरतरोरिव ते प्रसादः,
 सेवानुरूपमुदयो न परावरत्वम् ॥२०॥

एवं जनं निपतितं प्रभवाहिकूपे,
 कामाभिकाममनु यः प्रपन्नं प्रसङ्गात् ।
 कृत्वाऽऽत्मसात् सुरर्षिणा भगवन् गृहीतः,
 सोऽहंकर्यं तु विमुञ्जे तव भृत्यसेवाम् ॥२१॥
 मत्प्राणरक्षणमनन्त पितुर्वधधं,
 मन्ये स्वभृत्यपदपिवाक्यमृतं विधातुम् ।
 खड्गं प्रगृह्य यदबोचदसद्विभित्तुः,
 त्वामीश्वरो मदपरोऽवतु कं हरामि ॥२२॥
 एकस्त्वमेव जगदेतदमुष्य यत्स्वम्,
 अद्यन्तयोः पृथगवस्त्वसि मध्यतश्च ।
 सृष्ट्वा गुणव्यतिकरं निजप्रापयेदं,
 नाबेव तैरवसितस्तदनुप्रविष्टः ॥२३॥
 त्वं वा इदं सदसदीश भवांस्ततोऽन्यो,
 माया यदात्मपरबुद्धिरियं ह्यपार्था ।
 यद् यस्य जन्म निघनं स्थितिरीक्षणं च,
 तद् वै तदेव वसुकालवदष्टितवोः ॥२४॥
 न्यस्पेदमात्मनि जगद् विलयाम्बुमध्ये,
 शीपेऽऽत्मना निजसुखानुभवो निरीहः ।
 योगेन मीलितदृगात्मनिपीतनिद्रः,
 तुर्यस्थितो न तु तमो न गुणांश्च बुद्धिः ॥२५॥
 तस्यैव ते वपुरिदं निजकालशक्त्या,

सञ्चोदितप्रकृतिधर्मेण आत्मगूढम् ।

अम्भस्यनन्तशयनाद् विरमत्समाधेः,

नाभेरभूत् स्वकणिकावटवन्महाञ्जम् ॥२६॥

तत्सम्भवः कविरतोऽन्यदपर्यमानः,

त्वां वीजमात्मनि तत् स्ववर्हिर्विचिन्त्य ।

नाविन्ददद्दशतमप्लु निमज्जमानो,

जातेऽङ्कुरे कथसु होपलभेत वीजम् ॥२७॥

स त्वात्मयोनिरतिविस्मित आस्थितोऽञ्जै,

कालेन तीव्रतपसा परिशुद्धभावः ।

त्वात्मात्मनीश शुवि गन्धमिवातिशृङ्गे,

भूतेन्द्रियाशयमथे विततं ददर्श ॥२८॥

एवं सहस्रवदनाङ्घ्रिशिरःकरोरुः,

नासास्यकर्णनयनाभरणायुथोढ्यम् ।

मायामयं सदुपलक्षितसन्निवेशं,

दृष्ट्वा महापुरुषमाप मुदं विरिञ्चः ॥२९॥

तस्मै मयान् हयशिरस्तनुवं च विभ्रद्,

वेदद्रुहावतिवलयौ मधुकैटभाख्यौ ।

हत्वाऽऽनयच्छ्रुतिगणांस्तु रजस्तमश्च,

सत्त्वं तथ प्रियतमां तनुमामनन्ति ॥३०॥

इत्थं नृतिर्ययपिदेवभूपावतारैः,

लोकान् विभावयसि हंसि जगत्पतीपान्,

धर्मं महापुरुष पाप्मं युगातुष्टुत्तं,
 छन्नः कलौ यद्भवस्त्रियुगोऽथ स त्वम् ॥३१॥
 नैतन्मनस्तव कथासु विद्वदनाथ,
 सम्भीयते दुरितदुष्टमथासु तीव्रम् ।
 कामातुरं हर्षशोकभयेपणार्तिं,
 तस्मिन् कथं तव गतिं विमृशामि दीनः ॥३२॥
 निद्वैकतोऽन्युत विकर्पति माचितृणां,
 शिक्षोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ।
 घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्तिः,
 बह्वचः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥३३॥
 एवं स्वकर्मपतितं भववैतरण्याम्,
 अन्योन्यजन्ममरणाशनभीतभीतम् ।
 पश्यज्जनं स्वपरविग्रहवैरमैत्रं,
 हस्तेनि पारस्परं पीपृहि मूढमथ ॥३४॥
 को न्वत्र तेऽखिलगुरो भगवन् प्रयासः,
 उत्तारणेऽस्य भवसम्भवलोपहतोः ।
 मूढेषु वै महद्भुगृह आतवन्भो,
 किं तेन ते प्रियजनाननुसेवतां नः ॥३५॥
 नैवोद्विजे पर दुरत्ययवैतरण्याः,
 त्वद्दीर्घगायनमहाश्रुतमग्रचित्तः ।
 शोचे ततो विमुल्लसत् इन्द्रियार्थं,

मायासुखाय भरमुद्धतौ विमूढान् ॥३६॥
 प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्तिकामा,
 मौनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः ।
 नैतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्त एको,
 नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये ॥३७॥
 यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छं,
 कण्डूयनेन करयोरिव दुःखदुःखम् ।
 तृप्यन्ति नैह कृपणा बहुदुःखभाजः,
 कण्डूतिवन्मनसि जं विपहेत धीरः ॥३८॥
 मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म,
 व्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः ।
 प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां,
 वार्ता भवन्त्युत न वाच्यं तु दाम्भिकानाम् ॥३९॥
 रूपे इमे सदसती तव वेदं सृष्टे,
 बीजाङ्कुरारिव न चान्यदरूपकस्य ।
 युक्ताः समक्षमुभयव विचिन्विते त्वां
 योगेन वह्निमिव दारुणं नान्यतः स्थात् ॥४०॥
 'त्वं वायुरग्निरवनिर्वियदम्बु मात्राः,
 प्राणेन्द्रियाणि हृदयं चिदनुग्रहश्च ।
 सर्वं त्वमेव सगुणो विगुणश्च भूमान्,
 नान्यत् त्वदस्त्यपि मनोवचसा निरुक्तम् ॥४१॥

नैते गुणा न गुणिनो महदादयो,
 सर्वे मनःप्रभृतयः सहदेवमृत्योः ।
 आद्यन्तर्वन्त उरुगाय विदन्ति हि त्वाम्,
 एवं विष्टस्य सुधियो विरमन्ति शब्दात् ॥४२॥
 तत् तेऽर्हत्तम नमःस्तुतिकर्मपूजाः,
 कर्म स्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायाम् ।
 संसेवया त्वयि वि नेति पठङ्ग्या किं,
 भक्ति जनः परमहंसगतौ लभेत ॥४३॥

—